UNIVERSAL LIBRARY
OU_178406
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

[Cal]l No. H84 D61H   Accession No. G. H1093

[Aut]hor दीक्षित नारायण

[Title] हास्य के सिद्धान्त तथा आधुनिक हि[न्दी]

[T]his book should be returned on or before the date last marked below.

साहित्य - 1947

हास्य के सिद्धान्त

तथा

आधुनिक हिन्दी साहित्य

लेखक

स्वर्गीय नारायण दीक्षित एम० ए० एल-एल० बी०

त्रिलोकी नारायण दीक्षित एम० ए०

मुद्रकः—
पं० भृगुराज भार्गव
भार्गव-प्रिंटिंग-वर्क्स, लखनऊ।

श्रद्धेय डाक्टर दीनदयालु गुप्त

एम० ए०, एल एल बी०, डी० लिट्,

को

सादर समर्पित

श्री विद्यागुरवे नमः

वक्तव्य

शृङ्गार तथा करुण रसों की भाँति हिन्दी-साहित्य में हास्य-रस अधिक प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त कर सका। साहित्य के रचनात्मक काल के आरम्भ से लेखक हास्य-रस की ओर उन्मुख रहे हैं। अन्य प्रमुख रसों की भाँति प्रतिष्ठित न हो सकने का सबसे बड़ा कारण यह है कि सफल हास्य का सृजन अत्यन्त कठिन कार्य है। किञ्चिन्मात्र असावधानी के कारण लेखक अपने प्रयास में असफल हो सकता है। सफल हास्य का विधान जितना दुस्साध्य है उतना अन्य रसों का नहीं। हास्य-रस का अन्य रसों से सम्बन्ध न जानने के कारण भी प्रायः लेखक सफल हास्य की रचना करने में असफल होते हैं। उन्हें यह ज्ञात नहीं रहता कि परवर्ती रस इतना प्रबल न हो कि हास्य के उद्रेक में बाधा उपस्थित करे।

हिन्दी साहित्य के आदि काल में भी हमें हास्य-रस की रचनाएँ मिलती हैं। प्रायः लोगों की धारणा है कि हिन्दी में हास्यपूर्ण साहित्य का अभाव है परन्तु तथ्य इसके विरुद्ध है। समय तथा देश की गति के अनुसार लेखकों के सृजित हास्य में भले ही परिवर्तन प्रकट हो परन्तु प्रत्येक समय लेखक इसकी ओर आकृष्ट रहे हैं।

हमारे साहित्य में हास्य-रस की विवेचना अत्यन्त अल्प मात्रा में हुई है। प्रस्तुत निबन्ध के लिखने का लक्ष्य है हास्य के सिद्धान्तों तथा साहित्य में प्रयुक्त हास्य-रस की सम्यक् विवेचना। इस निबन्ध के पूर्वार्द्ध में हास्य के सिद्धान्तों पर विचार किया गया है। साथ ही साथ उसके आलम्बनों तथा भेदों का शास्त्रीय ढङ्ग से अध्ययन किया गया है।

जितने भी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है वे सब संस्कृत तथा अंग्रेजी आचार्यों के मत पर अवलम्बित हैं। सिद्धान्तों के विवेचन तथा प्रतिपादन के साथ ही साथ भारतीय तथा पाश्चात्य सिद्धान्तों के सामञ्जस्य को प्रकट करना लेखक का उद्देश्य है।

द्वितीय भाग में आधुनिक हिन्दी-साहित्य में प्रयुक्त हास्य में प्रकाश डाला गया है। इस भाग में नाटक, कविता, कहानी, जीवन चरित्र, निबन्ध तथा आलोचना सभी में सृजित हास्य रस की विवेचना की गई है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रणयन श्रद्धेय डा० दीनदयालु गुप्त तथा डा० केसरी नारायण शुक्ल के निरीक्षण में हुआ है। पं० भगीरथ मिश्र एम० ए० तथा श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना की अमूल्य सहायता एवं प्रोत्साहन के लिए लेखक कृतज्ञ है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना आज से प्रायः चार वर्ष पूर्व हुई थी। पुस्तक के लेखन में मेरे लघु भ्राता श्री प्रेम नारायण दीक्षित एम० ए० एल-एल-बी० ने बड़ी सहायता की थी। वे प्रायः पुस्तक की समाप्ति के लिए बहुत चिन्तित हो उठते थे। पुस्तक समाप्त होने के पश्चात् उसकी प्रेस कापी भी उन्होंने ही प्रस्तुत की थी। परन्तु दुख है कि वे अपने प्रयत्न तथा परिश्रम को प्रकाशित पुस्तक के रूप में देखने के लिए इस संसार में नहीं हैं। उनके चिर वियोग में विषाद-बादलों से आच्छादित हृदय और मस्तिष्क में किसी प्रकार का सहयोग नहीं रहा। उनके असामयिक निधन से जो क्षति हुई है वह कौन पूरी करेगा।

पुस्तक प्रकाशन के समय लेखक को योगेश वाजपेई का भी स्मरण हो आता है जिन्होंने इसके रचना समय में सहायता की थी।

त्रि० ना० दी०

२८ अगस्त १९४७

परिशिष्ट द्वितीय

पारिभाषिक-कोष

हास्य के सिद्धान्त

हास्य के सिद्धान्त

भारतीय नाट्य शास्त्र सम्बन्धी सबसे प्राचीन ग्रन्थ भरत मुनि का 'नाट्य शास्त्र' है। उसमें नाटक रचना की ओर विशेष ध्यान रख कर रस तथा रचना सम्बन्धी अवयवों की रचना की गई है। इसी ग्रन्थ के आधार पर 'दशरूपक' आदि अन्य नाट्य शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना हुई है। इन ग्रन्थों में हास्य रस का कुछ विशेष विवरण नहीं मिलता। इनमें विदूषक को हास्यरस का आलम्बन कह कर एक दो श्लोकों में सञ्चारी भाव तथा अनुभाव का उल्लेख कर हास्य रस का प्रकरण समाप्त कर दिया गया है। दशरूपककार का हास्यरस के विषय में निम्नलिखित मत है:—

"विकृताकृति वाग्विशेषैरात्मनोऽथ परस्यवा।
हासः स्यात् परिपोषोऽस्य हास्यस्त्रि प्रकृतिस्मतः॥"

अर्थात् हास्य का कारण अपनी या दूसरे की वेष भूषा, शब्दावली या कार्यकलाप हैं। इसी का परिपोषण (उत्कर्ष) हास्यरस कहलाता है जो तीन प्रकार का है, और कहा है कि "निद्रालस्य श्रम ग्लानि मूर्छाश्च सहचारिणः" अर्थात निद्रा, आलस्य, श्रम, ग्लानि और मूर्छा इसके साथ सञ्चरण करते हैं।

गयी है) हास्य के रूप में परिवर्तित होकर निकल जाती है।"*

गर्वीले प्रकृति के मनुष्यों के विपरीत कम शक्ति वाले मनुष्य रोने के स्थान पर हँसते हुए पाये गये हैं और फाँसी के तख्ते पर लटकने को जाते हुए मनुष्यों ने मार्ग में हास परिहास किया है। इस प्रकार अतिशय शक्ति विषयक सिद्धान्त पूरा-पूरा नहीं उतरता और उसके विस्तृत करने की आवश्यकता प्रतीत होती है।

एक प्रसिद्ध परिभाषा उन्नीसवीं शताब्दी के लेखक स्पेंसर (Spencer) की है। उनके सिद्धान्त के अनुसार हास्य का कारण 'असंगति के निरीक्षण' (Perception of Incongruous) में है। यह ध्यान देने की बात है कि सभी प्रकार की असंगति हास्य का कारण नहीं बन सकती। इस जीवन में तथा संसार में ऐसी अनेक असंगत घटनाएँ होती रहती हैं जिन पर मनुष्य को बिल्कुल हँसी नहीं आती है। सच्चरित्र तथा सज्जन मनुष्य दुखी रहते हैं और दुष्ट उन पर अत्याचार करते हैं। दोषी न्यायकर्ता बनकर निरपराधों को दण्ड देते हैं, और ऐसे सुधार की प्रतिष्ठा होती है जिससे दुर्गुण और बढ़ते हैं—जिन पर कोई बुद्धिमान् मनुष्य नहीं हँस सकता है। इससे प्रकट है असंगति हास्य का कारण

---

*The smile begins within the behaviour of feeing instinct......but this is too businesslike to Elaborate it.. ...It is within the behaviour of love instinct that this elaboration is carried out...and the smile is one of the first embroderies. But as the impulse of love gathers energy and as experience grows, the opportunities of interruption increases at the same time. When the behaviour containing love as an element is suddenly removed or weakened, some of this Energy becomes surplus and escapes in laughs."

नहीं हो सकती। स्पेंसर (Spencer) हँसी तथा इसका कारण अधोमुख असंगति (Descending Incongruity) में बताते हैं। इस विषय में उनका निम्न लिखित कथन ध्यान देने योग्य है। "हास्य की स्वाभाविक उत्पत्ति उस समय होती है जब बोध ज्ञान बड़ी चीज़ से छोटी चीज़ की ओर आकर्षित होता है जिसे हम 'अधोमुख असंगति' कहते हैं। इसके विपरीत उत्तरोत्तर असंगति होती है जिससे हास्य की उत्पत्ति न होकर आश्चर्य भाव की उत्पत्ति होती है।"* इस 'अधोमुख असंगति' का वर्णन बर्गसन (Bergson) द्वारा एक दृष्टान्त पठनीय है। "एक अभ्यागत बैठक कमरे में घुसता हुआ एक चाय का प्याला लिए हुए महिला से टकरा जाता है, उसका प्याला एक बूढ़े व्यक्ति पर उलट जाता है जो (बूढ़ा) शीशे की खिड़की से सट जाता है और शीशा टूट कर राह पर चलते हुए पुलिस मैन पर गिरता है, वह (सिपाही) शोर मचाकर अपने साथियों को बुला लेता है।"† इस घटना

---

*Laughter naturally results only when consciousness is unawarers transferred from great things to small only when there is what we call a descending incongruity. When, however, the final is on larger scale the initial event, the balance of income and expenditure on the wrong side and there is a shortage of energy to meet the occasion In this case ascending incongruity, there is no laughter and the emotion we call wonder results" "Laughter"—By Spencer.

†A visitor rushing into the drawing room knocks against a lady who upsets her tea cup over an old gentleman who backs into a glass window, which falls on a constable's head who sets the whole police force agog" Lei-rere—by Bergson.

विपर्यय व यान्त्रिक क्रिया हास्य के कारण हैं। इनके साथ ही विश्रान्ति या आत्म स्वातन्त्र्य की प्रवृत्ति भी हास्य के गौण कारण हैं। इनका उपयोग पाँच रीतियों से होता है :—पात्रों के शारीरिक गुण द्वारा, मानसिक गुण द्वारा, घटना, रहन सहन तथा शब्दावली द्वारा। बीसवीं शताब्दी की मनोवैज्ञानिक खोजों का उपर्युक्त निष्कर्ष है जिसका उपयोग पाश्चात्य साहित्यिक करते थे और करते हैं। व्यवहार की इन पाँचों रीतियों के समक्ष 'दशरूपक' का "विकृताकृति वाग्विशेषैर आत्मनोऽथ परस्य वा हास्य:" कितना महत्वपूर्ण तथा शुद्ध प्रतीत होता है। शब्दावली, वेशभूषा तथा कार्यकलाप के अन्तर्गत उपर्युक्त पाँचो रीतियाँ आ जाती हैं। इतना होते हुए भी संस्कृत साहित्य में दो एक को छोड़कर शेष सभी हास्य सम्बन्धी ग्रन्थों में पात्रों के भुक्खड़पन लालच तथा मूर्खता का प्रदर्शन कर सामाजिकों अथवा पाठकों को हँसाने का प्रयत्न किया गया है। फलत: हिन्दी-साहित्य में भी यही परम्परागत रूप अवतरित और ग्राह्य हुआ। केवल इस संकीर्णता को दूर करने के हेतु तथा हास्य के विस्तृत तथा व्यापक क्षेत्र का स्वरूप दिखाने के हेतु हास्य विषयक सिद्धान्तों का संक्षेप में उल्लेख किया गया है।

२

हास्य रस की विवेचना करते समय हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि हास्य-रस का जो स्वरूप भारतीय सिद्धान्तों में लक्षित होता है वही स्वरूप पाश्चात्य सिद्धान्तों में भी झलकता है। उल्लेख हो चुका है कि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का विवेचन साहित्यिक नहीं होता वरन् उन सिद्धान्तों के निष्कर्ष को ही साहित्य के उपयुक्त रूप दिया जाता है। इसी से केवल उस रूप के कारण स्वरूप अवयवों का विधान होता है। विदूषक की भेषभूषा, कार्यकलाप तथा शारीरिक चेष्टाएँ हास्योत्पादक होती हैं। विदूषक के इस हास्योत्पादक स्वरूप की प्रतिष्ठा में हास्य के प्राय: सभी सिद्धान्तों की झलक दिखायी पड़ती है। विदूषक द्वारा उत्पादित हँसी का यदि विश्लेषण करें तो उसके तल में यही कार्य करते हुए पाये जाते हैं। इसी प्रकार इन नवीन सिद्धान्तों तथा हमारे आचार्यों की धारणा में कोई विरोध नहीं लक्षित होता, प्रत्युत् इनमें सामञ्जस्य स्थापित किया जा सकता है।

हमारे साहित्य में हास्य को प्रमुख स्थान दिया गया है। साहित्य शास्त्र में हास्य का उल्लेख सञ्चारी भाव में न करके नव रस में किया गया है। रस के तीन अवयव विभाव, अनुभाव तथा सञ्चारी भाव होते हैं। विभाव (आलम्बन तथा उद्दीपन) रस का एक कारण होता है। अनुभाव उस रस से प्रभावित होकर शारीरिक चेष्टाएँ हैं। सञ्चारी, स्थायी भाव के साथ सञ्चरण करने वाले अन्य भाव हैं जो उत्पन्न तथा नष्ट हुआ करते हैं। अन्य भावों के रस रूप की निष्पत्ति उसी समय होती है जब स्थायी भाव के साथ में विभाव, अनुभाव तथा

सञ्चारी भाव का योग होता है। यह नियम हास्य तथा वीभत्स रसों के लिए कुछ शिथिल है। इन दोनों रसों की अनुभूति केवल आलम्बन के चित्रण से ही होती है। 'रस गङ्गाधर' के लेखक पं० जगन्नाथ जी का मत है कि आश्रय का आरोप ऊपर से कर लेना चाहिए। यह ठीक भी है। आश्रय की सत्ता का स्वीकार न होने के कारण ही केवल आलम्बन के चित्रण में हास्य रस की अनुभूति मानी गयी है। और अनुभाव बताने की आवश्यकता नहीं समझी गयी, क्योंकि आश्रय हो न होगा तो अनुभाव कहाँ से होगा ?

हास्य भाव का आश्रय कोई भी हो सकता है चाहे वह नाटकीय पात्र हो अथवा सामाजिक। सामाजिकों में रस की सत्ता मानने से इस कथन में कोई आपत्ति न होगी। इसी दृष्टिकोण से साहित्य शास्त्र में 'साधारणीकरण' के महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की रचना की गयी है। 'साधारणीकरण' का तात्पर्य है कि पात्र के द्वारा ही हृदय के भावों की व्यञ्जना की जाय। पात्र के आलम्बन हमारे आलम्बन बन जायँ। पात्र के साथ हम तादात्म्य का अनुभव करें। पात्र तथा दर्शक के हृदयस्थ भाव तथा आलम्बन एक हो जाते हैं तभी उत्कृष्ट 'साधारणीकरण' होता है। हास्य में भी कुछ भेद ऐसे हैं जिनमें हम पात्र के साथ तादात्म्य का अनुभव करते हैं। अतः वही उत्कृष्ट साधारणीकरण है। शुद्ध हास्य (True Comic), हास्य (Humour), वाग्वैदग्ध (wit) और उपहासात्मक नाटक (Satirical Play) में उत्कृष्ट 'साधारणीकरण' होता है। उपर्युक्त भेदों में पात्र का सामाजिकों के साथ पूर्णरूपेण साधारणीकरण हो पाता है। नाटक में उत्कृष्ट 'साधारणीकरण' हम उसी को कहेंगे जब भावों के साथ तादात्म्य अनुभव करें। शुद्ध हास्य वही है जिसमें पात्र के लक्ष्य

पर ही दर्शक हँसें। इस प्रकार कहानी में भी 'साधारणीकरण' होता है। कहानी में भी हम पात्रों के साथ प्राय: तादात्म्य का अनुभव करने लगते हैं। श्री अन्नपूर्णानन्द जी की कहानी 'बड़ा दिन' तथा 'मेरी हजामत' में उत्कृष्ट साधारणीकरण हुआ है।

'साधारणीकरण' के विषय में श्री रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन बहुत ही उपयुक्त है:—'साधारणीकरण' का सीधे शब्दों में अर्थ है श्रोता का भी उसी भाव में मग्न होना जिस भाव की कोई काव्यगत पात्र (या कवि) व्यञ्जना कर रहा हो। यह दशा तो रस की उत्तम दशा है। पर रस की एक मध्यम दशा भी होती है जिसमें पात्र द्वारा व्यञ्जित भाव में श्रोता का हृदय योग न देकर उस पात्र के ही प्रति किसी भाव का अनुभव करने लगता है। जैसे यदि कोई क्रोधी या क्रूर प्रकृति का पात्र किसी निरपराध, दीन और अनाथ पर क्रोध की प्रबल व्यञ्जना कर रहा है तो श्रोता या पाठक के मन में क्रोध का रसात्मक सञ्चार न होगा; बल्कि क्रोध प्रदर्शित करने वाले उस पात्र के प्रति अश्रद्धा, घृणा आदि का भाव जग सकता है। * यह भी एक प्रकार की रसात्मक अनुभूति ही है; पर मध्यम कोटि की।

हास्य के उपर्युक्त भेदों में सफल साधारणीकरण होने पर उत्तम कोटि की अनुभूति होती है। अत: वे हास्य के उत्कृष्ट अङ्ग हैं और उन्हीं का कलापूर्ण विधान साहित्य के अन्तर्गत होता है।

'नकल' भी हँसाने का एक उपकरण मात्र माना गया है। बन्दर की नक़ल पर लोग हँसते हुए देखे जाते हैं। यह नक़ल ही नाट्य शास्त्रों में 'नाट्य' कही गयी है। यह अनुकरण अभिनय द्वारा *अनुकार्य* *और* *अनुकर्ता* की एकता प्रदर्शित करने से पूर्ण होता है। आचार्यों ने चार प्रकार के अभिनय बताये हैं :—

* चिन्तामणि पृष्ठ ३१४।

वर्तमान सिद्धान्तों का सामञ्जस्य है। 'काव्य प्रकाश' का मत भी इस दृष्टि से पठनीय है—

"रतिर्मनोऽनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणापितम्।
वागा दिवै कृताञ्चेतो विकसो हास उच्चते॥"

उपर्युक्त श्लोक में भी वाणी आदि के विकार पर ज़ोर डाला गया है और उसी के कारण हास का कारण बताया गया है।

हास्य के आलम्बन

हास्य के आलम्बन

सत्रहवीं शताब्दी में किसी के अपकर्ष पर हँसी आती थी, उन्नीसवीं शताब्दी असम्बद्धता व असंगति पर हँसता था, बीसवीं शताब्दी विपर्यय, आवृत्ति और यांत्रिक क्रिया (automatism) द्वारा जीवित को जड़ के तुल्य देखकर ही हँसता है। यह परिवर्तन इस बात का द्योतक है कि प्रत्येक काल में हास्य रस के प्रति मानव वर्ग की अपनी अपनी धारणा थी और ये धारणाएँ एक दूसरे से पूर्णतया भिन्न थीं। जो वस्तुएँ किसी समय हास्य के आलम्बन व उपकरण मानी जाती थीं तथा जो विषय प्रहसनीय समझे जाते थे वे वर्तमान समय में हास्य के अनुकूल नहीं समझे जाते। उन विषयों पर आज केवल असभ्यता का ही चिह्न हँसना न होगा वरन् क्रूरता का परिचायक भी है। आज से प्रायः तीन सौ वर्ष पूर्व बौना, छोटी आँख व बड़ी नाक वाले मनुष्य प्रहसनीय विषय थे पर आज ये हमारी दया के विषय हैं। इसी प्रकार अब सब प्रकार की असंगति पर भी हँसी नहीं आती।

मनुष्य की इस मनोवृत्ति का मानव जीवन के साथ बड़ा साम्य है। मानव जीवन के समान यह भी काल कवलित होता रहता है। मानव जीवन की भावना के समान प्रहसनीय विषय तथा हास्य के आलम्बन भी नाशवान होते हैं। कुछ समय तक

ये ही विषय तथा आलम्बन मानव वर्ग को हँसा कर धीरे धीरे नष्ट हो जाते हैं। पर मानव जीवन की भाँति काल कवलित होते रहने पर भी ये मनुष्यों के समान नवीन स्वरूप को धारण कर सभ्यता के साथ ही उत्तरोत्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर होते हुए हम लोगों को हँसाया करते हैं। यह नाटककार का कर्तव्य है कि वह जनता की अभिरुचि का अध्ययन कर उसके अनुकूल हास्य की सामग्री उपस्थित करें।

हास्य के कारण ही हास्य के उपकरण बन जाते हैं। हास्य के इन्हीं सिद्धान्तों के अनुकूल सामग्री जुटाकर नाटककार अपने नाटकों में प्रहसनीय विषयों का समावेश करते हैं। इसके अनुसार अपकर्ष, विपर्यय, असंगति व यान्त्रिक क्रिया (automatism) उपकरण स्वरूप हैं। इन्हीं उपकरणों द्वारा नाटककार हास्य का उद्रेक पाँच रीतियों से करते हैं :— पात्र के शारीरिक गुण द्वारा, मानसिक प्रवृत्ति द्वारा, घटना द्वारा, रहन सहन द्वारा और शब्दावली द्वारा। कहीं कहीं शारीरिक अपकर्ष भी हास्य का कारण होता है, कहीं पर मानसिक प्रवृत्ति की असम्बद्धता हँसाती है; कहीं पर घटना की असंगति पर हँसी आती है; कहीं पर रहन सहन, वेशभूषा का विपर्यय हमें हँसा देता है और कहीं पर शब्दावली की यांत्रिक क्रिया (automatism) हँसा देती है; कहीं पर प्रहसनीय विषय में विपर्यय आदि सभी मिलकर हँसाते हैं।

शारीरिक गुण द्वारा हास्य का उद्रेक:—इसके द्वारा अत्यन्त शीघ्र निकृष्ट हास्य का उद्रेक होता है। साधारण खेल तमाशों में विदूषक बहुत ही शीघ्र हँसा देता है। भारतीय नाटकों की यह विशेषता है कि उनमें विदूषक की शारीरिक चेष्टाएँ भी साधारण जनता को हँसाती हैं। यह हास्य का उत्कृष्ट उपकरण नहीं है। यह उपकरण कुशल कलाकारों के द्वारा हेय समझा जाता है। अपकर्ष के

सिद्धान्त द्वारा शारीरिक विकृति लोगों को हँसाती है परन्तु बीसवीं शताब्दी में सभ्यता तथा करुणा हमें अङ्ग भङ्ग पर व्यङ्ग तथा हास्य करने से हमें रोकती है। इस विकृति या अङ्ग भङ्ग से अधिक असम्बद्धता या असंगति हमें हँसाती है। किसी मोटे तथा छोटे आदमी के साथ उसकी लम्बी तथा दुबली स्त्री को देखकर हँसी आ जाती है। विषमता तथा असंगति ही इन दोनों के सम्बन्ध में हँसी का कारण है। इसी प्रकार शारीरिक यांत्रिक क्रिया (automatism) के उदाहरण में उन चौबे जी को ले सकते हैं जो सदैव डकारा करते हैं और यजमान से भोजन की याचना करते समय भी डकारते हैं। वे अपनी प्रकृति से वाध्य होकर इस प्रकार आचरण करते हैं। उनकी यह आदत ही हमारी हँसी का मूल कारण बन जाती है।

अपकर्ष का सिद्धान्त शारीरिक चेष्टाओं के अतिरिक्त पात्रों और घटनाओं में भी देखा जाता है। किसी कृपण सूदखोर सेठ की दुर्गति पर हमें हँसी आ जाती है। ठगने वाला दूकानदार जब स्वयं ठग लिया जाता है और वह हाय हाय मचाने लगता है तो दूसरों को हँसी आ जाती है। इसी प्रकार जब कोई धूर्त स्वयं वञ्चित हो जाता है और उसकी धूर्तता ही उसकी प्रवञ्चना का मूल कारण होती है तो लोग हँसने लगते हैं। उपर्युक्त तीनों उदाहरणों में कोई शारीरिक अपकर्ष हास्य का कारण नहीं है वरन किसी घटना अथवा पात्र द्वारा उनका अपकर्ष होता है।

उपर्युक्त उदाहरण इस बात के द्योतक हैं कि सदा किसी की हँसी का न तो एक ही कारण होता है और न एक सिद्धान्त ही। हँसी के अनेक कारण होते हैं और अनेक सिद्धान्त। संभव है एक मनुष्य जिस वस्तु विशेष को देखकर खिलखिला उठता है, उसी के प्रति दूसरे की सहानुभूति हो। कई एक कारणों के एक साथ

कार्य करने पर भी हँसी की उत्पत्ति हो सकती है। शारीरिक बनावट, पात्र, घटना और शब्दावली सभी अपकर्ष के साथ मिलकर हमें हँसने के लिए प्रभावित कर सकते हैं।

पात्र के मानसिक गुण द्वारा हँसी का उद्रेकः—हँसाने की सुलभ तथा उत्कृष्ट सामग्री कुशल लेखक को पात्र के चरित्र में उपलब्ध होती है। यद्यपि हास्यरस के नाटकों में वैयक्तिक चरित्रचित्रण नहीं होता वरन् केवल किसी समुदाय की सामान्य विशेषताएँ ही प्रदर्शित की जाती हैं तब भी उस समुदाय विशेष के प्रतिनिधित्व का उन पात्रों में आरोप करके उनके चरित्र की रूपरेखा चित्रित की जाती है। यदि किसी नाटक में किसी सेठ को हास्य का आलम्बन बनाना है तो उसमें उसके वैयक्तिक गुणों की विशेष चर्चा न करके केवल उस समुदाय के सामान्य गुणों पर आक्षेप करके उसे पर्याप्त धनी, अत्यन्त लोलुप, जीर्ण वस्त्र पहिने हुए, आवश्यकता से अधिक कृपण, निष्ठुर तथा धर्मभीरु चित्रित करेंगे।

तुलनात्मक रूप से हास्य-रस के लेखकों को मानसिक अपकर्ष द्वारा हंसाने में अधिक सुगमता रहती है। यह अपकर्ष पाप या दुर्गुण ही हो, यह आवश्यक नहीं है, इसे केवल मूर्खता (बेवक़ूफ़ी) की हद तक पहुँच जाना चाहिए। किसी भी प्रकार का मिथ्या आडम्बर, दर्प या अभिमान हँसी का कारण हो जाता है। जब कोई धर्माडम्बर करने वाले पण्डित जी चौके में भोजन बनाते हुए बहुत दूर पर किसी कुत्ते की छाया पड़ने पर अपनी रसोई को अशुद्ध समझ कर खाद्य फेंक देते हैं तब उनकी इस मूर्खता पर हँसी आ जाती है। अथवा जब किसी मछली लिए हुए वैष्णव बङ्गाली से कोई कहे कि "यह मछली ले लीजिए" तो वे धर्म की दुहाई देते हुए फटकार बताते हैं और 'जलतरोई' कहने पर

सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं तो हमें उनके इस आडम्बर व मूर्खता पर हँसी आ जाती है। इसी प्रकार किसी दुर्गुणी तथा पापिष्ठ के बाह्याडम्बर पर भी हँसी आती है। अथवा जब कोई अफीमची या भँगेड़ी संसार भर के सभी मद्यों को हेय तथा निन्दनीय कह-कर स्वयं अपनी रुचि की मद्य की प्रशंसा के पुल बाँधने लगते हैं तो हँसी के फ़ुहारे छूट उठते हैं।

पात्रों के मानसिक अपकर्ष के द्वारा श्री मिश्रबन्धु ने भी अपने नाटक 'उत्तर भारत' में हास्य की सृष्टि की है :—

"कूँड़ी पाँयन थाँभि अउ स्वाँटा लइ कइ हाथ।
कूटि पीसि विजया छनै खाँड दूध के साथ॥
खाँड दूध के साथ मिर्च बादाम मिलावै।
पियै यार सब जोरि भंग का रङ्ग जमावै॥
डारि जेब माजूम चैन ते खाय खवावै।
कहै कबीरै डाटि मजा होरी का आवै॥" (पृ० ४३)

मिथ्याडम्बर मानसिक अपकर्ष का सूचक है इस पर मत-भेद हैं। बर्गसन (Bergson) के समर्थकों का इस विषय में यह कथन है कि इस हँसी का मूल कारण उन पात्रों का अपकर्ष नहीं प्रत्युत् यांत्रिक क्रिया (autonmatism) है। उनके अनुसार हमको हँसी इस बात पर नहीं आती कि यह उनके मानसिक अपकर्ष का सूचक है प्रत्युत् इस विचार से आती है कि वे उस अपकर्ष के हाथ में पड़े हुए जड़ वस्तु सदृश प्रतीत होते हैं। यह भी सम्भव है कि ऐसे स्थलों पर हँसी अपकर्ष तथा यांत्रिक क्रिया (automatism) दोनों ही के कारण हो। एक बात ध्यान देने योग्य और है कि ऐसे स्थलों पर हास्य धार्मिक हास्य नहीं है। यह केवल पाप या अवगुण पर उसे सुधारने की भी हँसी नहीं है। ऐसी हँसी गुण तथा अवगुण दोनों पर जब वे अपनी उचित

सीमा को लाँघ कर बेवकूफ़ी की हद पर पहुँच जाते हैं—जी खोल कर आती ही है।

पात्रों की मानसिक असम्बद्धता हँसी का दूसरा बड़ा कारण है। यह असम्बद्धता कभी किसी पात्र के अन्दर ही होती है तथा आन्तरिक संघर्ष का (inner conflict) कारण बनती है और कभी दो पात्रों के बीच होकर बाह्य संघर्ष (outer confict) का रूप धारण करती है। हास्य-रस-युक्त नाटकों में प्रवृत्ति यह है कि उनमें आन्तरिक संघर्ष नहीं दिखाया जाता है। इस प्रकार के नाटक में अनेक प्रकार के पात्र एक साथ ही रङ्गमञ्च पर उपस्थित होते हैं और वैषम्य द्वारा हास्य का उत्पादन करते हैं। कुशल डाक्टर के साथ मूर्ख कम्पाउण्डर, कृपण सेठ के साथ साख़र्च नौकर व किसी गुप्त कार्य करने वाले नायक के साथ वाचाल सहचर को नाटकों में दिखाकर और ऐसी परिस्थिति द्वारा विषमता उत्पन्न कर सामाजिकों को हँसाते हैं। यहाँ पर भी हँसी का केवल एक ही कारण नहीं है। पात्र की मानसिक विशिष्टता के साथ ही साथ हमें घटनाचक्र तथा शब्दावली भी हँसाने में सहायता देती है।

मानसिक यांत्रिक क्रिया (automatism) भी हँसाने का एक कारण है। श्रीजयशङ्कर 'प्रसाद' के 'स्कन्द गुप्त' में मुद्गल का बार बार 'कारणाम' 'कारणाम' कहना हँसी का कारण है। यह 'कारणाम' अपकर्षसूचक मानसिक विकार नहीं है; प्रत्युत् स्वभाव-वाध्य "तकिया कलाम' मात्र है। यद्यपि अपकर्ष और यांत्रिक क्रिया (automatism) इन दोनों में कोई विशेष नियत भेद नहीं बताया जा सकता। तब भी इसका अन्तर पागल के प्रलाप (जो अपकर्षसूचक है तथा मानसिक विकार है उस) से सुगमता से जाना जा सकता है।

घटना द्वारा हास्य का उद्रेक:—लेखक घटना द्वारा ही हँसाने का सबसे अधिक उपक्रम करते हैं। शारीरिक विकृति अथवा अवगुण द्वारा सदैव हास्य का उत्पादन होना सम्भव नहीं और चारित्रिक विशिष्टता चित्रण में उनकी कुछ न कुछ वैयक्तिक छाप पड़ ही जाती है परन्तु पूर्णतया घटना के अवलम्बित होने से नाटक उच्च कोटि का न होकर केवल प्रहसन (Force) मात्र रह जाता है। इसीलिए यह आवश्यक है कि कुशल नाटककार घटना प्रधान मात्र नाटक न लिखकर उसमें थोड़ी बहुत चारित्रिक विशिष्टता रख देते हैं।

नाटकों तथा कहानियों में न जाने अपकर्ष के सिद्धान्त पर कितनी कल्पित घटनाओं का निर्माण (विधान) होता है। हिन्दी के नाटक विशेषत: घटना प्रधान ही होते हैं। उन नाटकों में यह विशेषता होती है कि प्राय: सभी पात्र व कथानक घटनाओं पर ही अवलम्बित रहते हैं। उनमें सामुदायिक सामञ्जस्य भी बहुत कम पाये जाते हैं। श्री जी० पी० श्रीवास्तव के प्रहसन इसी अपकर्ष के सिद्धान्त के ही आश्रित हैं। हिन्दी के अधिकांश प्रहसनों मे जो विवाहेच्छुक किसी बूढ़े की जो खिल्लियाँ, उसका जो मज़ाक तथा उस पर जो व्यङ्ग किये जाते हैं उसकी कल्पना इसी सिद्धान्त को ध्यान में रखकर की गयी है। भवभूति के नाटक मालती-माधव में विवाह के पश्चात् नन्दन जब अपनी स्त्री (प्रच्छन्न वेष में पुरुष) से मिलने जाता है और अनुनय विनय करने पर लात खाता है तो हँसी इस घटना की अपकर्षता के कारण आती है। श्री 'अन्नपूर्णानन्द' की कहानी 'अकबरी लोटा' तथा 'बड़ा दिन' और 'बेढब' जी की कहानी 'सिनेमा की सैर' में भी हास्य का उद्रेक घटनाओं द्वारा किया गया है। अन्त में पूर्णानन्दजी व बेढबजी की कहानियों में घटना द्वारा हास्य का विधान करने में अत्यन्त ही पटु हैं। कहानियों में

एक घटना के पश्चात् दूसरी घटना का विधान इस प्रकार होता है कि हँसी आ जाना अत्यन्त स्वाभाविक है।

घटना विपर्यय भी हास्य उत्पादन का एक उपकरण है। जब हम देखते हैं कि एक दस वर्ष का बालक अपने सत्तर वर्ष के पितामह को पहाड़ा पढ़ाता है और शिक्षा देता है; एक वञ्चक (जालिया) स्वयं अपने फैलाये हुए जाल में फँस जाता है और पण्डित जी का दिक्शूल स्वयं उन्हीं के मार्ग का शूल हो जाता है तो हमें हँसी आ जाती है। इसी प्रकार घटना की असम्बद्धता अथवा असंगति हमें हँसाती है। जब चौबे जी यह कहते हैं कि मैं तो सूक्ष्म आदमी हूँ और पाँच सेर मिठाई जलपान में उड़ाते हुए दिखाये जाते हैं, क्रोध न करने का उपदेश देने वाले पुजारी जी अपनी स्त्री से कुपित होकर भगवान पर फूल फेंक फेंक कर चढ़ाते हैं और दाँत पीसते हुए जब गीता का पाठ करते हैं, कोई जैन महोदय अहिंसा के महत्व का पाठ पढ़ाकर नाटक के किसी दृश्य में रात भर खटमल मारते हुए दिखाये जाते हैं तो हमारी हँसी का वेग रुकता ही नहीं है। घटना की आवृत्ति भी हँसी का एक कारण है। अपनी प्रेयसी को खोजते हुए जब बार बार नायक को उसकी कुरूपा दासी मिलती है और वह नहीं, तो हँसी आ जाती है। घटना के साथ इस आवृत्ति का प्रयोग बहुत कम किया जाता है क्योंकि अधिकतर यह हँसी का कारण न होकर दु:ख का कारण बन जाता है। वर्तमान काल में आत्म स्वातंत्र्य की प्रवृत्ति भी हँसी उत्पन्न करती है। आजकल नाटकों में धर्माचार्यों का उपहास और उनके नियमों की जो विडम्बना दिखायी जाती है वह इन नियमों से ऊबे हुए जन समुदाय को हँसाती है। इस प्रवृत्ति पर सभ्यता का अत्यन्त कठोर नियंत्रण रहने के कारण न तो आत्म स्वातन्त्र्य की उच्छृंखल प्रवृत्ति सबको हँसाती

है और न सब इस प्रवृत्ति को उद्दीपित कर हँसाने के उद्योग को अच्छा ही समझते हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि केवल इतने ही उपकरण कार्य नहीं करते हैं। कभी-कभी कुशल लेखक अपनी कल्पना शक्ति द्वारा नयी पद्धति की उद्भावना कर सामाजिकों को हँसाने की एक और नयी सामग्री की उपस्थिति कर देते हैं।

रहन-सहन द्वारा हँसी का उद्रेक:—रहन-सहन और चाल-ढाल चरित्र के अंतर्गत ही आ जाता है और किसी घटना व शब्दावली के आश्रित होकर ही उसका उद्घाटन किया जाता है फिर भी कहीं-कहीं चाल-ढाल व रहन-सहन चरित्र से पूर्णतया भिन्न होते हैं। रहन-सहन का अपकर्ष किसी परिस्थिति के नियमों की अनभिज्ञता का रूप धारण करता है। किसी पण्डित को मद्यपों की मण्डली में जो कष्ट प्रतीत होता है अथवा किसी ग्रामीण को शिष्ट समुदाय में वार्तालाप करते हुए उद्विग्नता सी होती है, वही हमारी हँसी को उभाड़ने का कारण होता है। इस स्थल पर उस मनुष्य में न तो कोई अशिष्टता है न कोई अपकर्ष किन्तु प्रमुख कारण यह है कि उस मनुष्य में न तो उस समुदाय में विचार करने की शक्ति ही है न विचारों का साम्य ही; वस्तुत उस मनुष्य में कोई असम्बद्धता नहीं होती। केवल जन समुदाय उसकी चाल-ढाल को अपने रहन-सहन से समता कर उसकी विषमता से हँसते हैं। आधुनिक फैशन के रङ्ग मे प्रभावित मनुष्य पर अन्य प्राचीन भावों में पोषित मनुष्य हँसते हैं। इन दोनों वर्गों की हँसी का कारण केवल रहन सहन की विषमता ही है।

यांत्रिक क्रिया (automatism) भी इसी प्रकार हँसाती है। किसी दूसरे की नक़ल या सूरत बनाकर उसी प्रकार के आचरण करने में भी हँसी आती है। एक विशेष वातावरण में

उत्पन्न तथा बढ़ा हुआ मनुष्य किसी दूसरी परिस्थिति में अपने स्वभाव से लाचार होकर अपने पूर्व वातावरण के अनुसार कार्य कर लोगों को हँसाता है। वकील साहब प्रत्येक स्थान पर अपने पेशे की दुहाई देते हैं, डाक्टर साहब सदैव सबको किसी न किसी घातक रोग का कौर बताते हैं। प्राचीन सभ्यता में पले पोसे वृद्ध बाबा लोगों को नयी रोशनी बरबादी का प्रमुख कारण ही प्रतीत होती है। दर्शन शास्त्र के शिक्षक विवाह के शुभ अवसर पर भी अद्वैतवाद और सांख्य पर भाषण देते रहते हैं। यह सब केवल एक ही वातावरण में दीर्घ काल से रहने के कारण, एक ही प्रकार के काम करते रहने से मशीन की भाँति जड़ हो गये हैं। यह मशीन की तरह की प्रवृत्ति तथा रहन-सहन हँसी के कारण बन जाते हैं।

विदूषक का नाटकों में विधान (भारत में) इसी कार्य की पूर्त्ति के लिए किया जाता है। विदूषक का रहन-सहन ही हममें हास्योत्पादन का प्रमुख कारण है। इस रहन-सहन व वेषभूषा में जो हँसी का कारण है उसका विश्लेषण ऊपर किया गया है। केवल इतना ही कहना है कि विदूषक के जिस रुप की प्रतिष्ठा प्राचीन आचार्यों ने की है वह हास्योपयुक्त है और उनकी कार्यमत्ता का द्योतक है।

शब्दों के द्वारा हँसी का उद्रेक :—हास्य के इस उपकरण का प्रयोग हमारे यहाँ कहानी साहित्य में बहुत कम होता है। फिर भी श्री अमृतलाल नागर की कहानी 'तुलाराम शास्त्री' में इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं। साधारणतः नाटकों के प्रहसन सम्बन्धी दृश्यों में हास्य के इस उपकरण का विशेष प्रयोग रहता है। किसी घटना व चरित्र का उद्घाटन ही शब्दों के आश्रित है। जिस प्रकार नाटकों में घटना तथा चरित्र आवश्यक हैं उसी प्रकार शब्दावली की महत्ता है।

शब्दावली के अपकर्ष में असंगति का अंश भी मिला रहता है। अज्ञानतावश लोग कहते हैं कि "बेफ़जूल क्यों खर्च करते हो?" या "निखालिस घी कहाँ मिलता है?" ऐसे स्थलों पर उनके विचार तथा शब्दावली की असम्बद्धता या असंगति ही हँसी का मुख्य कारण है। उन्हें जो कुछ कहना होता है उन्हें वे ठीक भाषा रूप देकर ही कहते हैं पर वह पूर्णतया उनके आशय के विरुद्ध उतरता है। कुछ नाटकों में एक और प्रकार के पात्रों का विधान किया जाता है। ये पात्र एक दूसरे को समझने में असमर्थ रहते हैं तथा दूसरे पात्र की भाषा में स्वयं अपने मनोभाव प्रकट करने में असफल रहते हैं। एक मद्रासी अथवा बङ्गाली को हिन्दी में किसी को झिड़कते हुए देखिए तो हँसी छूट ही तो पड़ेगी।

शब्दों की यांत्रिक क्रिया (automatism) हँसी का सबसे बड़ा कारण होती है। श्रीमद्भागवत अथवा रामायण की टीका करते हुए पण्डित जी का बारम्बार "जो है सो" हमारी हँसी का कारण होता है। श्री सुदर्शन द्वारा प्रणीत 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' में गंडूशाह व झण्डूशाह इसी यांत्रिक क्रिया द्वारा हँसाते हैं। वे किसी प्रकार की बात कहे जाने पर बारम्बार अकड़कर कहते हैं कि "किस की मजाल है?" "जानते हो हम डिप्टी हैं।" ये तकिया कलाम नाटकों में केवल हास्य का उत्पादन करने के लिए रक्खे जाते हैं।

शब्दों द्वारा हँसी के विषय में यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि इसके कहते समय शब्दार्थ का ध्यान लेशमात्र भी नहीं रहता है। यह वाग्वैदग्ध से भिन्न है। वाग्वैदग्ध पर अलग अध्याय में विचार होगा पर इस समय यह जान लेना आवश्यक है कि वाग्वैदग्ध में जान बूझ कर ऐसे शब्दों की योजना होती है कि पहले असंगत जान पड़े पर अन्त में उनमें साम्य हो। उसे जान

बूझ कर ऐसा रूप दिया जाता है पर इसमें पात्र अथवा वक्ता ऐसे शब्द जान बूझ कर नहीं प्रयुक्त करता। 'फिजूल' को 'बेफिजूल', 'खालिस' को 'निखालिस' द्वारा व्यक्त करने का आशय नहीं होता है वरन् वह उसकी प्रकृति तथा स्वभाव का एक अङ्ग है। साथ ही 'बेफिजूल' कहने पर उसे अशुद्धता का लेश मात्र आभास नहीं मिलता।

नाटककार नये नये उपकरणों की उद्भावना करके सामाजिकों को हँसाया करते हैं। हास्य उत्पन्न करने की इन पाँच रीतियों के अतिरिक्त प्रच्छन्न या छद्म वेष का उपयोग भी होता है। भवभूति कृत 'मालती माधव' नाटक में छद्म वेष का प्रयोग हुआ है।

मानव-शरीर-तत्व-वेत्ताओं के अनुसार शक्ति का आधिक्य ही हँसी का मूल कारण है। उनके अनुसार उस पात्र को जानते हुए भी उसके छद्म वेष के कारण उसकी वास्तविकता के विषय में सन्देह होता है। इस प्रकार एक रुकावट उत्पन्न हो जाती है। इस अड़चन को दूर करने के लिए अधिक मानसिक शक्ति का संघठन होता है। अन्त में जब यह हमें पूर्ण रूप से निश्चित हो जाता है कि छद्म वेषी पात्र वही है तो रुकावट दूर हो जाती है और साथ-ही-साथ अधिक शक्ति हँसी में परिवर्तित होकर जनता को हँसाती है। छद्म वेष से सामाजिक लोग परिचित हों यही ध्यान देने योग्य बात है। बिना इसके न रुकावट होगी, न अधिक शक्ति का संघटन और फलतः हँसी का उद्रेक भी नहीं।

छद्मवेष के अतिरिक्त लेखक घमण्डी तथा दर्प में चूर्ण लोगों का भी अत्यन्त हँसानेवाला रूप सामने रखते हैं। नाटककार घमण्डी के गर्व को इतना बढ़ा देते हैं कि वह बेवकूफी की सीमा तक पहुँच जाता है और वह मूर्खता ही हमें हँसाती है। इसी प्रकार मद्यपान, अशुद्ध आचरण आदि दुर्गुण तथा अधर्म कार्यों

को भी हास्योत्पादक रूप देते हैं। धार्मिक विरोध के सामाजिकों के हृदय में भाव न पैदा करना चाहिए। विरोध द्वारा पहले रुकावट उत्पन्न करना और पुनः उसका परिहार हँसी के लिए आवश्यक है। परिहार के तीन उपाय हैं :—

१—*शीघ्रता*:—पात्र के दुर्गुण इतनी शीघ्रता से दिखाने चाहिए कि सामाजिकों को उनको धार्मिक समझने का अवसर न मिले।

२—*उमङ्ग*—पात्र अपने दुर्गुण में दोष न समझकर इस जोश व उमंग से कार्य करता हुआ आनन्द मनाता है कि सामाजिक उस जोश व उमङ्ग से प्रभावित होकर उस दुर्गुण पर ध्यान नहीं देते।

३—*अन्य पात्रों की कठिन आलोचना पर ध्यान न देना।*

चोरी—प्रहसनों में कृपण सेठ के लड़के को अपने पिता का सारा धन चुकाकर खर्चते देखकर सामाजिकों को हँसी आती है। इस हँसी का कारण है कि उस पात्र को सामाजिक चाहते हैं। इस प्रेम के कारण किसी के जेब काटने का अवगुण बहुत खराब नहीं लगता। दूसरा कारण यह हो सकता है कि जिसकी जेब काटी जाती है उससे हमारा वैमनस्य है और उसके अपकर्ष पर हमें हँसी आती है।

कायरता:—कायरता पर हमें वहीं हँसी आती है जहाँ पर पात्र से हमें वीरता की कोई आशा नहीं है। "विशाख" नाटक में महापिङ्गलक राजा की कटार देखकर कहता है, "यथार्थ है श्री श्रीमान ! उसे भीतर कीजिए; नहीं तो मेरी बुद्धि घूमने चली जायगी।" महापिंगलक की कायरता यहाँ पर हँसाती है। इसके विपरीत 'रणधीर प्रेममोहिनी' नाटक में हमें चौबे जी की कायरता पर हँसी न आकर क्रोध आ जाता है। उसके इस कथन

"जो भैय्या ! आग लगाओ तो पहिले मो कों अपनो कुंडी सोंटा उठाय लेबो दीजै" की कायरता से उसका स्वामिविद्रोह ऐसी घृणा का उद्रेक होता है कि हँसी आती ही नहीं । विरोध इतना शक्ति-शाली हो जाता है कि उसका परिहार नहीं हो पाता। फलत: हँसी विलीन हो जाती है।

मिथ्या भाषण भी हँसी के उपयुक्त सामग्री उपस्थित करता है। इसका कारण भी मिथ्याभिभाषी से सहानुभूति और दूसरे के प्रति द्वेष है। इस विषय में भी विरोध की उत्पत्ति तथा परिहार की ओर ध्यान देना चाहिए।

इन थोड़े उपकरणों के विवेचन से अब प्रकट हो गया कि हँसी का क्षेत्र केवल विदूषक के भुक्खड़पन और लालचपन तक ही समित नहीं है। इसका क्षेत्र व्यापक है। यह मनोवृत्ति भी संसार के सभी विषयों पर—गुण तथा अवगुण दोनों पर—हँस सकती है। संसार के बहुत से पदार्थों से हँसी की थोड़ी बहुत सामग्री मिल सकती है। कुशल लेखक को चाहिए कि हास्य का ऐसा विधान करे कि अपनी तथा सामाजिक दोनों की रुचि परि-मार्जित तथा विस्तृत हो।

विदूषक

विदूषक

हिन्दी साहित्य में हास्य का विधान तीन प्रणालियों पर अवलम्बित है। इन्हीं तीनों प्रणालियों के आधार पर हिन्दी के साहित्यिक हास्य-रस का सृजन करते हैं। अधिकतर नाटकों में विदूषक ही हास्योत्पादन का एक साधन होता है। कुछ नाटकों में विदूषक का कोई स्थान ही नहीं रहता वरन उनमें यह कार्य किसी पात्र के द्वारा सम्पन्न कराया जाता है। उस पात्र तथा विदूषक में अन्तर यही होता है कि इस पात्र में विदूषक की परम्परा-बद्ध विशिष्टताएँ नहीं होतीं। हिन्दी-नाट्य-प्रणाली इन दोनों प्रणालियों के हेतु संस्कृत नाट्य-शास्त्र की ऋणी है। संस्कृत नाट्य प्रणाली में विदूषक ही प्रमुख हास्यसृजक पात्र है। अन्य पात्र द्वारा विदूषक का कार्य सम्पन्न कराना भी संस्कृत के नाटकों में पाया जाता है। भवभूति के 'मालती माधव' नाटक में द्वितीय प्रणाली की प्रतिष्ठा हुई है। राजा का साला नन्दन विदूषक न होते हुए भी हास्य का आलम्बन है। उसका चरित्र दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण है—साधारण पात्र के रूप से तथा हास्योत्पादक के रूप से। वह तथा कार्य-कलाप दोनों ही हास्य का उद्रेक करते हैं।

हिन्दी नाटकों में हास्य का विधान अधिकतर दो प्रकार से हुआ है—(१) विदूषक द्वारा (२) बिना विदूषक। विदूषक

द्वारा हास्य का सृजन भारतेन्दु बाबू, 'प्रेमघन' इत्यादि में अधिक पाया जाता है। दूसरे प्रकार का हास्य हमारे साहित्य के कुशल कलाकार तथा सफल नाटककार सर्वश्री 'प्रसाद'जी तथा मिश्रबन्धु के नाटकों में उपलब्ध है।

इस द्वितीय प्रणाली ने एक नवीन प्रणाली को जन्म दिया। इसे हम द्वितीय प्रणाली का आधुनिक तथा परिवर्तित स्वरूप भी कह सकते हैं। इस रीति के अनुसार हास्य का उद्रेक न विदूषक ही द्वारा और न एक ही पात्र के द्वारा होता है। एक कोटि के नाटकों में कुछ पात्र बार बार हँसाया करते हैं। ऐसे पात्र एक दो की संख्या से अधिक होते हैं। इस प्रकार के पात्र हमें हिन्दी साहित्य के उत्कृष्ट नाटककार श्री मिश्रबन्धु के नाटक 'पूर्वभारत' (पृ० ८०-१२८), 'ईशान बर्मन' (पृ० १३१), 'उत्तर भारत' (पृ० ३१, १४३) इत्यादि सफल नाटकों में मिलते हैं। 'शिवाजी' नाटक में भी अनेक पात्रों के द्वारा उत्कृष्ट हास्य का सृजन हुआ है।

इस स्थान पर हम उन नाटकों का विवेचन करते हैं जिनमें हास्य का विधान विदूषक के ही आश्रित होता है। नाट्याचार्यों द्वारा लिखित विदूषक की विशिष्टताओं का चित्रण हिन्दी के नाटककारों ने पूर्णतया नहीं किया है। यदि एक नाटककार ने एक विशिष्टता को, दूसरे ने दूसरी को तो किसी तीसरे ने उन विशिष्टताओं में कुछ काट छाँट करके विदूषक पर अपनी छाप लगा दी। संस्कृत प्रणाली का सबसे अधिक अनुसरण 'पूर्ण' जी ने अपने नाटक 'चन्द्रकला भाव कुमार' में किया है।

भारतेन्दु बाबू इस विषय की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण हैं। सर्वप्रथम हम उन्हीं के नाटकों में विदूषक को पाते हैं। परन्तु उनके विदूषक का कोई व्यवस्थित रूप नहीं मिलता है। इनका

विदूषक सफलता की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। इनका विदूषक परिवर्तनशील है। इसका सर्वप्रथम कारण यह है कि भारतेन्दु बाबू ने न तो संस्कृत परम्परा के आधार पर अपने विदूषक की रचना की है और न वह अपनी ओर से कोई विशिष्टता ही प्रदान कर सके हैं। उनके विदूषक द्वारा उत्पादित हास्य में न विशिष्टता ही है और न वह परिमार्जित ही है। उदाहरणार्थ :—

"हे ब्राह्मण लोगो ! तुम्हारे मुख में सरस्वती हंस सहित वास करें और उनकी पूँछ मुँह में न अटके। हे पुरोहित नित्य देवी के सामने मराया करो और प्रसाद खाया करो।"

इस कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि भारतेन्दु बाबू के विदूषक सर्वत्र तथा सर्वथा अशिष्ट हैं। उनसे यत्र तत्र शिष्ट तथा मार्मिक हास्य का भी सृजन होता है :—

"पुरोहित—महाराज वैष्णवों का व्रत तो जैन मत की एक शाखा है और महाराज दयानन्द स्वामी ने इन सबका खूब खण्डन किया है, पर वह तो देवी को भी तोड़ने को कहते हैं। यह नहीं हो सकता क्योंकि फिर बलिदान किसके सामने होगा ?"

विदूषकयुक्त नाटकों में भी दो भेद हो सकते हैं :—

१—वे नाटक जिनमें विदूषक नायक संबद्ध है। इस श्रेणी में 'प्रसाद' जी का 'स्कन्द गुप्त' और विशाख तथा श्रीनिवासदास जी का 'रणधीर' और 'प्रेममोहिनी' आते हैं।

२—वे नाटक जिनमें विदूषक नायक से अलग रहता है। 'प्रसाद' जी का 'अजातशत्रु' इसी भेद के अन्तर्गत आता है।

इन दोनों के दो भेद और हो सकते हैं :—

१—कथावस्तु से सम्बद्ध विदूषक—जैसे 'स्कन्दगुप्त' तथा 'विशाख'।

२—कथावस्तु से तटस्थ विदूषक—जैसे 'रणधीर' और 'प्रेम-मोहिनी' और 'अजातशत्रु'।

विदूषक पर विचार करते समय इन भेदों पर ध्यान रखना आवश्यक है। कारण कि इन भेदों को सामने रख कर विदूषक का अध्ययन करने से फिर वर्गीकरण में सरलता होगी।

लाला श्रीनिवासदास के 'रणधीर और प्रेममोहिनी' नाटक में विदूषक—चौबे जी—का स्वरूप भारतेन्दु बाबू के विदूषकों के स्वरूप से कुछ व्यवस्थित तथा स्पष्ट अवश्य है। लाला जी के विदूषक में हमें संस्कृत की परम्पराबद्ध कुछ विशिष्टता अवश्य मिलती है। इस नाटक में विदूषक सीधे नायक से ही सम्बन्धित है और घटनाचक्र में उसका कोई हाथ नहीं है। संस्कृत प्रणाली के अनुसार चौबे जी भी भुक्खड़, लालची ब्राह्मण हैं। संस्कृत नाटकों में विदूषक कुछ स्वार्थी, लालची, मूर्ख, भुक्खड़ तथा नायक के साथ कुछ आत्मीय सा दिखाया जाता है। यही प्रयत्न इस नाटक में भी किया गया है परन्तु अन्त तक निर्वाह नहीं हुआ।

'प्रसाद' जी को 'विशाख' नाटक में विदूषक महापिङ्गलक के चित्रण में सफलता प्राप्त हुई है। इस विदूषक के प्रति हमारी कौतूहल रुचि आद्योपान्त रहती है। संस्कृत प्रणाली के अनुसार महापिङ्गलक भी राजा के मानापमान का ध्यान रखता है। वह हँसोड़ भी बहुत कम है पर जिस स्थल पर हास्य का उद्रेक करना चाहता है वहाँ उसे सफलता निस्सन्देह प्राप्त होती है। उसका हास्य अव्यक्त, परिष्कृत, शिष्ट तथा सुरुचि पूर्ण है। प्राचीन परम्पराबद्ध संस्कृत के विदूषकों की विशिष्टताओं के अतिरिक्त प्रसादजी ने अपने विदूषकों को अपनी ओर से भी कुछ विशिष्टता प्रदान किया है।

'अजातशत्रु' का विदूषक नायक से भी अलग है और घटना

प्रवाह से भी। यद्यपि 'वसन्तक' 'उदयन' के आश्रित है फिर भी दोनों में से किसी का भी साक्षात्कार नहीं दिखाया गया है। नाटक की कथा को अग्रसर करने में भी 'वसन्तक' का सहयोग अधिक नहीं है। 'वसन्तक' पर संस्कृत साहित्य के विदूषकों की सी छाया है। उसमें वही भुक्खड़पन है जो हम संस्कृत नाटकों के विदूषकों में पाते हैं। वसन्तक का हास्य सुष्ठु तथा सुरुचिपूर्ण होता है।

'स्कन्द गुप्त' 'प्रसाद' जी का सर्वोत्कृष्ट एवं सफल नाटक है। सफलता के अनेक कारणों में से उसका विदूषक भी एक कारण है। विदूषक विषयक नवीनतम उत्कृष्ट प्रयास है मुद्गल के विधान में। 'प्रसाद' जी का यह विदूषक अपनी नवीन सत्ता रखता है। मुद्गल भुक्खड़ है और निरा भुक्खड़। वह हँसोड़ भी है पर उसकी हँसी गम्भीरता के रङ्ग मे रँग गयी है। वह विचारवान् भी है। उसकी विचारशीलता भी हमारी हँसी के मार्ग में वाधा है। रूढ़िबद्ध अन्य विदूषकों की भाँति वह सदैव दाँत ही नहीं खोले रहता है। उसके कथन में हमें दुःख तथा क्षोभ की भी रेखा मिलती है। वह वीर, देशभक्त तथा नाटक के कथानक के अग्रसर करने में सहयोग देनेवाला है। इतना सब कुछ होते हुए भी जहाँ वह हँसाना चाहता है वहाँ सफल हास्य का सृजन करता है।

उपर्युक्त नाटकों में विदूषक की विवेचना तथा अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि भारतेन्दु बाबू के समय से विदूषक का प्रवेश हिन्दी नाटकों में हुआ। उस समय से इसका स्वरूप परिवर्तित ही होता रहा। केवल पेटूपन पर ही अवलम्बित हास्य को प्रधानता न देकर अवपरिष्कृत तथा शिष्ट हास्योत्पादक कारणों का आरोप विदूषक पर किया जा रहा है।

कीथ (Keath) तथा विल्सन (Wilson) जैसे पाश्चात्य संस्कृत विद्वानों ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया है कि विदूषक ब्राह्मण ही क्यों रक्खा गया है ? वास्तव में राजा का सच्चा तथा अन्तरङ्ग मित्र होने के कारण यह आवश्यक है कि विदूषक विद्वान् तथा तत्काल उत्तर देने में समर्थ हो। राजा के निकटस्थ होने के कारण यह भी आवश्यक प्रतीत होता है कि वह सम्मानित वंश का हो।

एक विचारणीय बात और उपस्थित हो जाती है। वह यह कि प्रायः संस्कृत के सभी नाटककारों ने अपने नाटकों में विदूषक को पेटू, भुक्खड़ तथा लालची दिखाया है। उसी विदूषक की प्रतिच्छाया हिन्दी नाटकों के विदूषक पर भी पड़ी है। पेटूपन के ही गुण को नाटककारों ने क्यों इतना अधिक पसन्द किया है ? बात यह है कि पेटूपन स्वार्थचिन्तन की ओर संकेत करता है। नाटक में जीवन संग्राम में एक विशिष्ट आवेशमय भाग के चित्रण में पेटूपन की पुकार जगत् की मधुर भाषा के अमर व्यापार की ओर भी मनुष्य का ध्यान आकर्षित कर लेती है। संसार में प्रेम व युद्ध ही एक सत्य नहीं है, पेट भी एक अनिवार्य सत्य है। इस दार्शनिक समीक्षा के साथ भी राजा के अन्तरङ्ग मित्र विदूषक का भूख ही भूख चिल्लाना, हर बात में पेट का रूपक लगाना वास्तव में हँसी की बात है। जो राजा अनेक प्राणियों का अन्नदाता है, उसी का मित्र पेट पर हाथ धरे लड्डुओं के हेतु लार टपकाये— क्या यह कम हास्यास्पद बात है ?

पेटूपन का प्रदर्शन 'प्रसाद' जी में कोई नई बात नहीं है। यही पेटूपन संस्कृत के उत्कृष्ट नाटककार भास ने अपने विदूषकों में प्रदर्शित किया है। उनके 'अविमारक' नाटक में विदूषक स्वामिभक्त है, रणकुशल है और साथ ही साथ पेटू वह प्रथम

श्रेणी का है। 'मृच्छकटिक' का विदूषक भी इसी पेट-पीड़ा का प्रकीर्ण है। कालिदास का 'माढव्य' भी इस विशेषता से रहित नहीं है।

हिन्दी नाटकों से विदूषक का प्राधान्य अब धीरे धीरे हट रहा है। आधुनिक नाटककार अब केवल एक ही अथवा अनेक पात्रों द्वारा हास्य का सृजन करते हैं।

विदूषकों से युक्त नाटकों में हास्य का विधान किस प्रकार होता है, उनकी परम्परा क्या है, उनका प्रभाव क्या हुआ, इन बातों पर ऊपर विचार हो चुका है। यहाँ पर उन नाटकों की विवेचना करेंगे जिनमें हास्य का विधान बिना विदूषकों के होता है। किसी नाटक में कथा हास्योत्पादक होती है, किसी में घटना के वशीभूत पात्र स्वयं ही हास्यास्पद बन जाते हैं, किसी मे पात्र की वचनावली हास्य का कारण होती है और किसी किसी नाटक में सभी बातों का सम्मिश्रण एक ही साथ होता है। इनके अतिरिक्त कुछ नाटकों में भ्रान्त या निरर्थक का प्रयोग होता है, किसी में वाग्वैदग्ध का, किसी में शुद्ध हास्य का प्रयोग दर्शकों के मनोरंजन तथा हास्य के लिये होता है। विदूषकविहीन नाटकों के निम्नलिखित भेद हो सकते हैं:—

१—वे नाटक, जिनमें कथावस्तु स्वयं ही हास्योत्पादक होती है और भ्रान्त का प्रयोग होता है। ऐसे नाटक प्रहसन (farce) कहलाते हैं। इस श्रेणी में जी० पी० श्रीवास्तव का 'कुर्सी मैन' श्री बदरीनाथ भट्ट का 'घोंघा बसन्त' तथा श्रीसुदर्शन का 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' हैं।

२—वे नाटक जिनमें उपहास का प्रयोग हुआ है। इन्हें उपहासात्मक नाटक (sairical plays) कहते हैं। उदाहरणार्थ जी० पी० श्रीवास्तवा का 'साहित्य का सपूत' और भट्ट जी का 'मिस अमेरिकन'।

इसी प्रकार अनेक भेद हो सकते हैं। इन्हीं भेदों में वैदग्धपूर्ण

(witty plays), हास्यात्मक नाटक (humourous) तथा शुद्ध हास्यात्मक नाटक (true comical plays) भी हो सकते हैं। इन सबको छोड़कर कुछ नाटकों में पात्रों की वैयक्तिक विशिष्टताएँ हँसाती हैं। इसके लिये यह भी आवश्यक नहीं है कि अमुक प्रकार का ही हास्य हो अथवा अमुक प्रकार का हास्य वर्जित है।

भ्रान्त हास्य के प्रकरण में प्रहसन के विषय में बहुत लिखा जा चुका है फिर भी यहाँ उल्लेख कर देना आवश्यक है कि प्रहसन की कथा अतिरञ्जित होती है और समाज की कुरीतियों पर अवलम्बित होती है। प्रहसन में पात्रों के नाम भी जनता को हँसाते हैं। उपहासात्मक नाटकों में किसी व्यक्ति या संस्था पर आक्रमण किया जाता है। उपहास घृणा का शस्त्र है। उपहास के अन्तर्गत सुधार की भावना निहित रहती है। पं० बदरीनाथ भट्ट के उपहासात्मक नाटक 'मिस अमेरिकन' में भी अंग्रेजों, नरेशों तथा सेठों पर आक्षेप हुए हैं।

आधुनिक हिन्दी-साहित्य में विदूषक द्वारा सर्वोत्तम हास्य का सृजन श्री जयशङ्कर 'प्रसाद' ने किया है और विदूषक की परम्परा आगत प्रणाली को हटाकर उत्कृष्ट हास्य का उद्रेक अपने पात्रों के द्वारा करने का श्रेय हिन्दी साहित्य के सुविख्यात नाटककार 'प्रसाद' जी तथा डा० श्यामबिहारी मिश्र तथा पं० शुकदेव बिहारी मिश्र —मिश्र-बन्धु—को है। मिश्रबन्धुओं ने हिन्दी में प्रायः सात उच्च कोटि के नाटकों (पूर्वभारत, उत्तर भारत, शिवाजी नेत्रोन्मीलन, ईशान वर्मन, रामचरित ......) की रचना की है जिनमें सफल हास्य के सभी लक्षण वर्तमान हैं। यहाँ पर विशेष रूप से उल्लेखनीय बात उनमें सृजित हास्य की है। मिश्र-बन्धुओं ने अपने इन नाटकों में हास्य का उद्रेक अनेक पात्रों द्वारा किया है। इन पात्रों का महत्व केवल हास्य की दृष्टि से ही नहीं है वरन्

उनका महत्व अन्य दृष्टियों से भी स्थापित किया जा सकता है। इन पात्रों में कोई नागरिक है, कोई सिपाही है और अनेक ग्रामीण हैं। यत्र तत्र प्रमुख पात्रों के द्वारा भी हास्य का उद्रेक हो जाता है परन्तु यह प्रकट नहीं होता है कि वे प्रयत्न करके सामाजिकों को हँसाना चाहते हैं। उदाहरणार्थः—

रावण—अबे तू यहाँ कहाँ से आ गया ? जा यहाँ से……।

नरान्तक—क्या यह कोई खराब जगह है ?

रावण—खराब नहीं है क्या अच्छी है ?

*　　　*　　　*

रम्भा—यह इनकी बातें हैं। स्वयं मेरा रुपया चाहते हैं। जब मैंने कड़ा तक़ाज़ा किया तब उसी के बदले में माला मुझे दे दी।

नरान्तक—पिता जी यह क्या बात है ? मेरी तो बुद्धि चक्कर खा रही है।

रावण—अरे तू डेरे पर क्यों नहीं जाता ? यहाँ खड़ा खड़ा क्या पञ्चायत कर रहा है ? बदमाश कहीं का।

नरान्तक—मैं रोने लगूँगा। मुझसे आप कभी ऐसी बातें नहीं करते थे। आज क्या हो गया है ?

रम्भा—आज इनकी अक्ल मारी गई है। जुएँ में दाम हारे, उसमें माला गयी। अब बेचारे निर्दोष बच्चे को डाटते हैं।

(रामचरित्र नाटक अं० १, दृ० ३, पृष्ठ २२)

उपर्युक्त उदाहरण से प्रकट हो जाता है कि श्री मिश्र-बन्धुओं ने कितनी कुशलता से हास्य का विधान किया है।

विदूषकयुक्त नाटकों में हमें एक बात सर्वत्र खटकती है वह यह देखकर कि विदूषक यंत्र की भाँति प्रत्येक अङ्क में उपस्थित है और सामाजिकों को बरबस हँसाने का प्रयत्न कर रहा है। परन्तु श्री मिश्र-बन्धुओं ने अपने नाटकों में इस बात का ध्यान रक्खा है कि

कहीं हास्य का विधान अस्वाभाविक न प्रतीत हो। मिश्रबन्धु के नाटकों में हास्य का विधान करने वाले पात्र किसी निश्चित समय अथवा स्थान पर नहीं मिलते वरन् वे यत्र तत्र उपस्थित होकर अपने सुरुचि पूर्ण तथा परिष्कृत हास्य के द्वारा दर्शकों का मनोरञ्जन करते हैं। यह विशेषता प्रायः अन्य नाटकों में दुर्लभ है।

हास्य के भेद

हास्य के भेद

उपर्युक्त परिच्छेदों में हास्य की व्याख्या तथा परिभाषा पर ध्यान देने से हम इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि हास्य का उद्रेक केवल हर्ष अथवा प्रसन्नता के कारण नहीं होता। मानव प्रकृति ही ऐसी विचित्र है कि सामान्य मनोभाव में भी उसमें हँसी का सञ्चार होना साधारण सी बात है। आनन्द का लेश मात्र भी ध्यान न रहते हुए, हर्ष का कोई सन्दर्भ न होते हुए भी कश्चित् अवसरों पर मनुष्य हँसी से ओतप्रोत हो जाता है। परन्तु इस प्रकार की हँसी और अन्य हँसी में भेद भी होता है। उदाहरणार्थ एक मूर्ख का हँसना एक शिष्ट के हँसने से भिन्न तथा भेदयुक्त है। इन दोनों की हँसी तथा एक दार्शनिक की हँसी में आकाश पाताल का अन्तर है। एक ओर पागल का अट्टहास और एक कोमलाङ्गिनी की मृदु मुस्कान में कितना महान् भेद होता है। हँसी अनेक प्रकार की होती है अतः उसका भेद गिनाना सरल कार्य नहीं है। उदाहरणार्थ हम खेल, विजय और घृणा की हँसियों को लेते हैं। विजयी अपने बल तथा प्रयत्न को सफल होते देख विजय के गर्व से हँसता है। खेल की हँसी में हमें आत्म-स्वातन्त्र्य की मात्रा प्रफुल्लता के साथ मिश्रित मिलती है। तीसरी

प्रकार की हँसी है घृणा की। यह घृणा द्वारा व्यञ्जित होती है और स्वस्थ कदापि नहीं कही जा सकती।

आवश्यक तो यही है कि मानव हर्ष आदि भावों के आने पर ही हँसे पर ऐसे अवसर देखे गये हैं जब मनुष्य शोकपूर्ण अवसरों पर भी हँस पड़ता है। एकमात्र शिक्षित युवक पुत्र की मृत्यु पर पिता संवेदना प्रकट करने के लिए आये हुए साथियों को हँस हँस कर शर्बत पिलाते हुए देखा गया है। उसने हँस हँस कर ही चिता में अग्नि लगायी पर कुछ ही घण्टों बाद वह मूक हो गया और उसे दो मास की अस्वस्थता भुगतनी पड़ी और अब भी बोल नहीं पाता। उत्तरी सीमान्त प्रान्त का एक पठान जब युद्धस्थल से लौटा तो घर में स्त्री व बच्चों को मरा हुआ पाया। यह दृश्य देखकर वह "यह खूब हुआ" "यह खूब हुआ" कह कर हँसने लगा। अन्त में हँसते हँसते उसके दिमाग़ की एक नस फट गयी और फलतः उसकी मृत्यु हो गयी।

संस्कृत साहित्य के आचार्यों ने हँसी के तीन भेद माने हैं। 'दश रूपक' कार के हास्य के भेद इस प्रकार हैं:—

"विकृताकृति वाग्विशेषैर आत्मनोऽथ परस्य वा।
हासः स्यात् परिपोषोऽस्य हास्य त्रिप्रकृतिस्मृतः॥
स्मितं इह विकास नयनं, किञ्चित लक्ष्यं द्विजं तु हासितं स्यात्
मधुर स्वरं विहसितं, स शिरः कम्पं इदं उपहासितं
अपहासितं सा स्रात्रं, विक्षिप्ताङ्गं भवति अतिहासितं
द्वे द्वे हसितं चैषाम् ज्येष्ठे मध्येऽधने क्रमशः॥"

नेत्रों का विकास स्मित है, जिसमें कुछ दाँत भी दिखायी दें वह हसित है, जिसमें कुछ मधुर ध्वनि हो वह विहसित है। जिसमें सिर हिलने लगे वह उपहसित है। जिसमें हँसते हँसते आँसू आ जाँय वह अपहसित है और जिसमें सारा शरीर हिलने लगे वह

प्रतिहसित है। स्मित और हसित उत्तम, विहसित और उपहसित मध्यम तथा अपहसित और प्रतिहसित अधम पात्रों में काम आते हैं। स्मित, विहसित और अपहसित आत्मस्थ अर्थात् अपने ऊपर की हँसी है और शेष परस्थ अथवा दूसरे के ऊपर की।

'साहित्य दर्पण' का मत भी इसके अनुकूल है पर जगन्नाथ पण्डित 'आत्मस्थ' और 'परस्थ' से दूसरा आशय ग्रहण करते हैं।

"आत्मस्थः परसंस्थश्चेत्यस्य भेद द्वयं मतं।
आत्मस्थो द्रष्टुरुत्पन्नो विभावेक्षण मात्रतः॥
हसतं मपरं दृष्ट्वा विभावश्चोप जायते।
योऽसौ हास्य रस्तज्जै परस्थः परिकीर्त्तितः॥
उत्तमानां मध्यमानां नीचानामप्य सौ भवेत्।
त्र्यवस्थः कथितस्तस्य षड्भेदाः सन्ति चापराः॥"

हास्य रस दो प्रकार का होता है—एक आत्मस्थ दूसरा परस्थ। आत्मस्थ उसे कहते हैं जो देखने वाले को विभाव हास्य के विषय को देखने मात्र से उत्पन्न हो जाता है, और जो हास्य रस दूसरे के कारण ही होता है उसे रसज्ञ पुरुष परस्थ कहते हैं। यह उत्तम, मध्यम और अधम तीनो प्रकार के व्यक्तियों में उत्पन्न होता है; अतः इसकी तीन अवस्थाएँ कहलाती हैं एवं उसके और छः भेद हैं। उत्तम में हसित और स्मित, मध्यम में विहसित और उपहसित तथा नीच में अपहसित और अतिहसित होते हैं। जिसमें कपोल थोड़े विकसित हों, नेत्रों के प्रान्त अधिक प्रकाशित न हों, दाँत दिखायी न दें और जो मधुर हो वह हँसना स्मित कहलाता है। जिस हँसने में मुख, नेत्र व कपोल विकसित हो जायँ और कुछ दाँत दिखाई न दें उसे हसित माना जाता है। जिस हँसने में शब्द होता है, जो मधुर हो, जिसकी पहुँच शरीर के अन्य अवयवों में भी हो, जिसमें मुँह लाल हो जाय, आँखें कुछ मिच जाँय और ध्वनि

गम्भीर हो उसे विद्वान लोग विहसित कहते हैं। जिसमें सिर और कन्धे सिकुड़ जायँ, टेढ़ी नजर से देखना पड़े और नाक फूल जाय उस हास्य का नाम उपहसित है। जो हँसना असमय हो, जिसमें आँखों में आँसू आ जायँ, कन्धे एवं केश खूब हिलने लगें उस हँसने का नाम आचार्य शार्ङ्गदेव ने अपहसित रक्खा है। जिसमें बहुत भारी व कर्णकटु शब्द हो, नेत्र आसुओं से भर जायँ और पसुलियों को हाथों से पकड़ना पड़े वह हँसना अतिहसित कहलाता है।

हमारे देश में नाटकों के नियमों की रचना अभिनय को दृष्टि में रखकर की गयी है। इस अभिनय का प्रमुख स्थान होने के कारण ही हास्य में इन शारीरिक चेष्टाओं को ध्यान में रखकर स्मित आदि भेदों की कल्पना हुई है। हास्य के भेद उनके गुणों या उद्देश्यों को ध्यान में रखकर नहीं किये गये हैं। इसका एक कारण प्राचीन आचार्यों का दृष्टिकोण है। हमारे यहाँ रस प्रधान है तथा वह आनन्दस्वरूप माना गया है। इसी कारण हास्य के भेदों में दुःखमिश्रित हास्य को नहीं मिलाया जिनको कि आधुनिक मनोवैज्ञानिक बताते हैं।

हास्य के ये भेद शारीरिक चेष्टा और स्थल के अनुसार किये गये हैं। आगामी प्रकरण में हास्य का भेद गुण तथा उद्देश्य के अनुसार किया जायगा।

हास्य के भेद

(उत्तरार्द्ध)

गुण तथा उद्देश्य और उपकरण के अनुसार हास्य के भेद हास्य (humour), उपहास (satire) और भ्रान्त तथा वाग्वैदग्ध (Wit) हैं। इसमें प्रथम (हास्य) को वास्तविक इसलिए कहा गया है कि इसका क्षेत्र कोई घटना, चरित्र या कार्य है। अपनी विशिष्टताओं के कारण हास्य का भेद शीघ्र ही लक्षित हो जाता है।

प्रहसनीय विषय के प्रति कोई विरोधी भाव न होना चाहिए। साधारणतया जब हम हँसते हैं तो हास्यास्पद पात्र के प्रति न तो हममें घृणा और न क्रोध के भावों का सञ्चार होता है। हँसते समय न तो हम किसी दूसरे भाव से अपने को प्रभावित ही समझते हैं और न हँसने के बाद हम विश्लेषण करके किसी भाव का प्रभाव (केवल एक दो स्थलों को छोड़कर) जानने में समर्थ होते हैं। यह अज्ञानता या (किसी अन्य ही भाव की) प्रभाव-हीनता हँसने के लिए आवश्यक है क्योंकि क्रोध का आवेश या घृणा की उपेक्षा हास को वशीभूत करके स्वयं प्रबल हो जाती है और ऐसा होने पर हँसी विलीन हो जाती है। परन्तु हास्य के

लिए इस अज्ञानता तथा प्रभावहीनता की आवश्यकता नहीं है। हास्य में प्रहसनीय विषय के प्रति हल्की सी सहानुभूति का सम्मिश्रण रहता है। हास्य (Humour) हृदयहीनता का हास्य नहीं होता वरन् प्रहसनीय विषय की दुर्बलताओं पर होता है। परन्तु वह हास्य घृणा से प्रेरित होकर नहीं, उस वस्तु के प्रति क्षोभ प्रकट करने के हेतु भी नहीं प्रत्युत उसकी गतिविधि को अबाध, अनिवार्य और स्वाभाविक जानकर किञ्चित् सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए।

'प्रसाद' जी ने 'अजातशत्रु' में निम्नलिखित स्थल पर इसी प्रकार का प्रयोग किया है :—

"यह सब ग्रहों की गड़बड़ी है। ये एक बार ही इतना काण्ड उपस्थित कर देते हैं। कहाँ साधारण बाला हो गयी थी राज-रानी। मैं देख आया, वही मागन्धी ही तो है। अब आम लेकर बेचा करती है और लड़कों के ढेले खाया करती है। ब्रह्मा भी भोजन करने के पहिले मेरी तरह भाँग पी लेते होंगे तभी तो ऐसा उलट फेर ...." (पृ० १६७)

वसन्तक को इसी उलट फेर पर हँसी आती है। इस हँसी को वह ब्रह्मा को भँगेड़ी बनाकर व्यक्त करता है। वसन्तक की यह हँसी न तो घृणा प्रदर्शन के लिए है और न संसार में ग्रहों की गड़बड़ी पर क्रोध प्रकट करने के लिए है। संसार की गति पर यह हँसी मागन्धी की वर्तमान दशा तथा अवस्था के प्रति वसन्तक की सहानुभूति की सूचना देती है।

यह भी आवश्यक नहीं है कि हास्य का प्रहसनीय विषय दुर्बलतापूर्ण ही हो अथवा हमारी सहानुभूति इस प्रकार के हास्य के साथ हो ही।

जिस प्रकार एक दार्शनिक की तीव्र दृष्टि संसार की गति

निरीक्षण में सूक्ष्म तथा तत्पर होती है उसी प्रकार हास्य के आश्रय की दृष्टि मानव (या संसार) की दुर्बलताओं, उसके चरित्र की असंगति या असम्बद्धता आदि के निरीक्षण में सदैव तत्पर होती है, जिस प्रकार दार्शनिक की हँसी में घृणा, क्षोभ या उपेक्षा नहीं होती वरन् सहानुभूति की मात्रा अवश्य रहती है, उसी प्रकार हास्य में घृणा आदि न होकर केवल सहानुभूति ही होती है। जिस प्रकार संसार की दुर्बलताएँ साधारण मनुष्यों की दृष्टि में नहीं लक्षित होती हैं और फलतः दार्शनिक एक पागल सा प्रतीत होता है उसी प्रकार यह भी साधारण जनता द्वारा उपहासात्मक होकर झक्की बक्की कहलाता है।

हास्य वैयक्तिक होता है और इस व्यक्तिगत प्रधानता के कारण ही—जो बात एक को ठीक मालूम होती है वह दूसरे को सङ्गत नहीं जान पड़ती—न तो इस हँसी को सब समझ ही सकते हैं और न सब उसकी प्रशंसा ही कर सकते हैं। हास्य की इसी (वैयक्तिक प्रधानता) विशिष्टता के कारण ही हास्य (Humour) को सार्थक में निरर्थक (Nonsense in sense) कहा गया है।

इस सहानुभूति में करुणा की एक अत्यन्त सूक्ष्म धारा का सदैव प्रवाह रहता है। वह अपने प्रहसनीय विषय पर हँसता है तथापि हृदय से यही इच्छा करता है कि इस विभाव की दुर्बलता दूर हो जाय। यह सुधार की इच्छा सदैव गौण ही रहती है वह कभी प्रधान नहीं होती। यदि यह भावना प्रधान हो जाय तो हास्य की मात्रा विलीनप्राय हो जाय। प्रधानतः इस हँसी का कारण सुधार नहीं वरन् सुधार की इच्छा और भावना मात्र ही है। इसके लिए अत्यन्त निर्मल तथा उदाराशय होने की आवश्यकता है। जार्ज मेरिडिथ (George Meredith) ने अपने कथन में हास्य (Humour) की आवश्यकताएँ इस प्रकार से बतायी हैं:—

"यदि आप उस पर खूब लोट पोट होकर हँसें, हँसते हँसते उसे ढकेल दें, उसे मार दें, उसके लिए आँख से आँसू निकल पड़ें, उसकी समानता अपने में देखें और अपने पड़ोसी में उस पर उतना ही तरह दिखावें जितना आप हँसें (या उसकी दुर्बलताओं का उद्घाटन करें) तो समझिए कि हास्य की प्रेरणा हो रही है। हास्य के आश्रय की चेष्टा संसारव्यापी है, जिसके हास में करुणा की झलक मिलती है।" *

दूसरे स्थान पर जार्ज मेरिडिथ (G. Meredith) कहते हैं कि "आप अपने हास्य की योग्यता का अनुमान इससे कर सकते हैं कि आप अपने प्रेमपात्रों पर बिना अपना प्रेम कम किये हँस सकें।"†

हैज़लिट (Hazlitt) के अनुसार "प्राहसनिक का यथातथ्य वर्णन हास्य है और विदग्धता उसका किसी दूसरी वस्तु की समानता या वैषम्य द्वारा उद्घाटन है।" ‡ यह हास्य उत्पादक

---

* If you laugh all round him, tumble him, roll him about, deal him a smakle and drop a tear on him, own his likeness to you and yours to your neighbour, spare him as like as you shun, pity him as much as you expose, it is a spirit of humour that is moving you .... The stroke of the great humourist is world wide with lights of tragedy in his laughter."

† "You may estimate your capacity for comic perception by being able to detect the redicule of them you love without being loving them less."—"Humour"

‡ "Humour, is the........... the ludicious as it is in itself wit in exposing it, by comparing or contrasting it with something else" Essay on"—Humour"

रचना के दृष्टिकोण से तो ठीक है परन्तु इसमें एक को हास्य कहने का और दूसरे को विदग्धता-पूर्ण कहने का कारण नहीं बताया गया है और न प्रहसनीय (Ludicious) तथा हास्य के भेद ही स्पष्ट किये गये हैं ।

बर्गसन (Bergson) के हास्य में विडम्बना (Irony) का विपर्यय मिलता है । विडम्बना में हम उस वस्तु में विश्वास करने का ढोंग रचते हैं जिसमें हमारा विश्वास नहीं है । हास्य में हम उस वस्तु के प्रति अपना अविश्वास प्रकट करते हैं जिसमें वस्तुतः हमारा विश्वास है । यह परिभाषा बहुत अंश तक हमें सत्य जान पड़ती है परन्तु इससे हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि यह सर्व-व्यापी है अथवा सर्व-मान्य है ।

ये (साधारण हँसी और हास्य की हँसी की) असमानताएँ हास्य वृत्ति में कुछ विशिष्टताएँ बताती हैं । वस्तुओं का शान्त निरीक्षण—क्रीड़ामय तथा विचारपूर्ण हास्योत्पादक वस्तु के स्वागत की विधि जो क्षमापूर्ण है और साथ साथ क्षमता का परिहार भी करता है ।

भ्रान्त अथवा निरर्थक :—प्रहसनों (Farce) में भ्रान्त अथवा निरर्थक का प्रयोग पर्याप्त मात्रा से अधिक में होता है । भ्रान्त हम में कई प्रकार से हास्योत्पादन करता है । सर्व (१) प्रथम भ्रान्त को हम उस रूप में हँसाते देखते हैं जब एक वस्तु को वह कल्पना की सीमा से उल्लङ्घन कराके वास्तविकता से बहुत दूर कर देता है । (२) दूसरे भ्रान्त में एक वस्तु का वर्णन इतना अत्युक्तिपूर्ण होता है कि उसका रूप ही पूर्णतया बदल जाता है । (३) भ्रान्त में वस्तु का आकार विकृत कर दिया जाता है और वह विकृत रूप हमें हँसाता है । भ्रान्त या निरर्थक हास ही अन्यान्य प्रकार के हास्यों का जनक है । मनुष्य के लिए सर्वप्रथम हास्य की यही

एक वस्तु है। जब बालक हँसता है तो सबसे पहिले इसी हास की रेखा से मुख पर आह्लाद प्रकट होता है। जिन बातों पर हम शैशवावस्था में हँसते हैं वे प्रायः निरर्थक ही हुआ करती हैं; उस समय हमारे हास्य का कोई विशेष कारण नहीं होता है। यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि जिस वस्तु को देखकर एक बालक खिलखिला उठता है उसके प्रति एक वृद्ध को हँसी लेश मात्र नहीं आती। बालकों, युवकों अथवा वृद्धों को हँसी में महान अन्तर होता है। जिन बातों को युवक तथा वृद्ध निरर्थक जानकर उनकी ओर से विमुख हो जाते हैं उन्हीं वस्तुओं की ओर बालकों की हास्य प्रवृत्ति तीव्र होती है। सरल चित्त मनुष्यों के लिए भी भ्रान्त अथवा निरर्थक का वही महत्व होता है जो बालकों के लिए। इसी कारण हमारे साहित्य समाज में प्रहसनों का आधिक्य है। इन प्रहसन लेखकों में श्री जी० पी० श्रीवास्तव तथा श्री बदरीनाथ भट्ट उल्लेखनीय हैं। यद्यपि दोनों लेखकों के प्रहसनों की कथावस्तु अत्युक्तिपूर्ण तथा प्रयुक्तियुक्त हैं पर असम्भव नहीं है। जरा सी उच्छृंखलता और असावधानी हास्य को अश्लीलता के क्षेत्र में ढकेल देती हैं। कथावस्तु का केवल अतिरञ्जित होना अथवा अयुक्तयुक्त होना ही उसे प्रहसन के युक्त नहीं बना देता। प्रहसन के उपयुक्त होने के हेतु कथावस्तु को आद्योपान्त हँसी मे ओतप्रोत होना चाहिए। यही नहीं, प्रहसन के प्रत्येक कार्य, चरित्र तथा वर्णन मे हँसी आनी चाहिए। एडीटर की धूर्त दच्छिलता के विषय में भट्ट जी कहते हैं :—

"कल घर के हिसाब में डेढ़ आने की भूल रह गयी थी। इस पर एडिटर और एडिटराइन में झगड़ा हुआ। एडिटराइन ने असाधारण गालियाँ दीं जिनका कोई मतलब नहीं था। एक अपढ़ औरत से जुबान की लड़ाई में हार जाने से उन्हें अपने ऊपर

लज्जा और क्रोध आया इसलिए घर से असहयोग कर बाहर टहल रहे हैं कि कौंसिल के उम्मेदवार मतलब सहाय उन्हें घेरते हैं।"*

इसके वर्णन हमें हँसी की पर्याप्त सामग्री देते हैं। फलस्वरूप एडिटर की झल्लाहट और अपना राग अलापने के कारण वह मसाला इकट्ठा होता है कि दर्शक जी खोल कर हँसते हैं। इसी प्रकार जी० पी० श्रीवास्तव की कथावस्तु प्रायः अयुक्तयुक्त होती है। आपकी 'अक्ल की मरम्मत' तो इतनी अतिरञ्जित हो गई है कि वह यथार्थता से बहुत दूर जा पड़ती है। इस प्रहसन में बदहवास राय अपने मित्र रसिकलाल से अपनी स्त्री को प्रसन्न करने का उपाय पूछते हैं। रसिकलाल उसे अपनी स्त्री की प्रत्येक बात पर अच्छा कह देने की सलाह देता है। बदहवास राय भी ऐसा ही निश्चय कर घर आता है। उसकी स्त्री कुपित आती है और कहती है "मैं ही न प्राण त्याग दूँ।"

बद०—अच्छा।

सुशीला—तो फिर आज ही इस प्राण को त्यागे देती हूँ।

बद०—अच्छा।

सुशीला—अभी जाकर मैं विष खाती हूँ।×

बद०—अच्छा।

इस उपर्युक्त प्रहसन में हँसी का कारण भ्रान्त अथवा निरर्थक हास है। घटनायें इतनी अतिरञ्जित हैं कि अविश्वसनीय हो गयी हैं। घटनाचक्र स्वयं असम्भव है।

भ्रान्त हास्य के विषय मे एक बात और ध्यान देने योग्य है। हास्य (Humour) के विपरीत भ्रान्त हास

---

* लबड़ धोधो पृ० ७४।

× नोक झोंक पृ० ५२।

में हास्यास्पद पात्र को अपने उपहास्यास्पद होने का ज्ञान कभी न आना चाहिए। यदि उसे स्वयं उसका ज्ञान हो जायगा अथवा दर्शकों को ही इसका ज्ञान हो जायगा तो हँसी न आयेगी। उस हास्य में अभाव के स्थान पर घृणा या अनुकम्पा घर कर लेगी। प्रहसनों में हास्यास्पद पात्र को अपने उपहासास्पद होने का ज्ञान न होना चाहिए। "घोंघा बसन्त" में भट्ट जी ने इसका ध्यान रक्खा है। अपनी प्रशसा में घोंघा बसन्त जिन्हें उनके मित्रों ने शिकारपुरी का उपनाम दिया है, कहते हैं:—

"खाट के पाये से चुटिया बाँध बाँध कर रात रात भर पढ़ा, तब कहीं इण्टरमीजियट पास हुआ। और कहा गया था कि संसार के इतिहास में तुम जिसे सबसे बड़ा आदमी समझते हो उस पर निबन्ध लिखो। मैंने अपने बाबू जी पर लिख दिया जिससे मुझे सेकण्ड डिवीज़न मिला यद्यपि वह पटवारी हैं।"* फल के छिलकों के बारे में वे वर्मा जी के शब्दों में कहते हैं:—

"गूदा नहीं तो सुगन्ध तो बाक़ी है, फेंक कैसे दूँगा। मैंने तो सुगन्ध समेत के पैसे दिये थे। मेरे पैसे क्या कोई मुफ़्त के थे।"†

घोंघा बसन्त शिकार पुरी इन शब्दों को उत्कर्ष विधायक समझकर बड़े जोर शोर से कहते हैं और दर्शक खूब हँसते हैं। जनता उनको हास्यास्पद समझती है पर सामाजिकों के इस विचार का उन्हें ध्यान नहीं है। भ्रान्त के लिए यह अज्ञानता आवश्यक है। (A. Nicoll) ए० निकाल का कथन विचारणीय है —

"The absurd on the other hand is purely

---

* लबड़ घोंघो पृ० ८०।

† लबड़ घोंघो पृ० ८३।

unconscious. We laugh at 'e' etourdi but he himself is quite innocent of the sense of our merriment..... .. ....The absurd character puts all his follies unconscurusly to the world! "Introduction to the irony of Drama."

प्रहसनों की भाँति हिन्दी कहानियों में भी भ्रान्त का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुआ है। भ्रान्त का प्रयोग 'बेढब' तथा 'चोंच' की कहानियों में अधिक हुआ है। 'बेढब' जी के कहानी संग्रह 'बनारसी एक्का' के दो एक उदाहरण देखिये:—

"मैंने दो साल हुए एक पनामा ब्लेड खरीदा था उसी से आज तक डाढ़ी खुरचता हूँ। अब वह सुई सा पतला हो गया है; पर जब तक कमर के समान बारीक न हो जाय, उसे त्याग नहीं सकता। इसी प्रकार से मेरे जूतों का तल्ला धीरे धीरे घिस कर गायब हो गया है। परन्तु उसके ऊपर का भाग ठीक है। मैं उसी को पैर में कस कर बाँध लेता हूँ। चलते समय किसी को पता नहीं चलता।" *

भ्रान्त एक सामाजिक हास है। हास स्वत: सामाजिक है इसी कारण समाज विरुद्ध पुरुषों को हास्यास्पद पात्र बनाया जाता है। आवश्यक है कि सामाजिकों की दृष्टि में वह कार्य इतना विरोधी न हो जाय कि उनकी घृणा उबल पड़े।

उपहास (satire):— पिछले परिच्छेदों में इस बात को अनेक बार स्पष्ट किया गया है कि हास्य में सहानुभूति का सम्मिश्रण रहता है। कारण कि हास्य का हृदय से घनिष्ट सम्बन्ध है। जिस हास्य में हृदय की सहानुभूति की मात्रा नहीं होती वरन्

---

* बनारसी एक्का पृ० ८३।

उस हँसी में घृणा आदि सहानुभूति विरोधी भावों की छाया पड़े उसे उपहास (satire) कहते हैं। उपहास से हमारा तात्पर्य है व्यङ्ग। उपहास, घृणा अथवा विरोध प्रदर्शित करने का एक अस्त्र है। व्यङ्ग का दूसरा रूप विषाक्त वचनों की वर्षा या मार्मिक चुटकियाँ ही हैं। इसमें हृदय की सहानुभूति का लेश मात्र भी स्पर्श न होने के कारण हास्य का उद्भव होना असम्भव सा है। उसी हँसी का स्थान क्रूरता ग्रहण कर लेती है। उपहास का उद्देश्य घृणा प्रकाशन मात्र होता है, हँसाना नहीं। तब भी उसमें हास्य मिश्रित होने के कारण उसे हास्य के भेदों के अन्तर्गत लिया गया है।

हास्य के अन्य भेदों में तथा उपहास में बड़ा अन्तर होता है। न केवल गुणों में वरन् प्रवृत्तियों में भी भेद होता है। अन्य प्रकार के हास्यों में किसी वस्तु को हास्यास्पद होने का मुख्य कारण उस वस्तु का सामाजिक विरोध होता है अथवा केवल मनोरंजन के लिये ही उस वस्तु को हास्यास्पद बना दिया जाता है। हम उस समय हँसी के द्वारा उस वस्तु के प्रति अपना भाव प्रकट करते हैं। परन्तु हास्य में पूर्णतया इसके विपरीत होता है। उपहास में समाज स्वयं हास्यास्पद बन जाता है। उसमें समाज के प्रति उपेक्षा का भाव प्रदर्शित किया जाता है और समाज पर आक्षेप रहता है। यदि अन्य प्रकार के हास्य को समाज रक्षक का स्वरूप दिया जा सकता है तो उपहास को समाज पर आक्रमण करने वाला तो हम कह ही सकते हैं। उपहास किसी व्यक्ति, समाज, संस्था अथवा समूह की दुर्बलताओं तथा दुर्गुणों का उद्घाटन कर उस पर आक्षेप करता है। अन्य हास्य का लक्ष्य होता है हँसना मात्र, पर इसका अभिप्राय किसी वस्तु विशेष का विरोध करना है।

हमारे साहित्य में उपहास का प्रयोग अधिक किया गया है। वर्तमान सभ्यता के मनुष्यों को अपनी पुरानी सभ्यता तथा समाज में उनके छिद्रान्वेषण का अवसर मिलता है। उन्हें उस समाज में दुर्बलताएँ ही प्रकट होती हैं। उनका उद्घाटन करके वे अपने हृदय की प्रतिकार तथा क्रान्ति की भावना को प्रकाश में लाना चाहते हैं। इस उपहास का मुख्य विषय है सामाजिक, धार्मिक तथा अन्य प्रकार की मूर्खताएँ जो साधारण शब्दों में कुरीतियाँ कही जाती हैं।

भारतेन्दु बाबू का उपहास सामाजिक अथवा धार्मिक है। इनके प्रधान उपहासात्मक नाटक 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' और 'अन्धेर नगरी' है। इन दोनों नाटकों में सामाजिक और राजनैतिक उलट फेर का दृश्य दिखाकर उन पर उपहास किया गया है।

उपहास में जिस प्रकार घृणा का स्थान होता है उसी प्रकार हास्य का भी आरोप आवश्यक है परन्तु 'प्रसाद' जी के उपहास में कई एक स्थलों पर हँसी का उद्रेक होता ही नहीं है। उनका उपहास कभी कभी अत्यन्त मार्मिक तथा चुटीला होता है किन्तु कभी कभी तो वह पूर्णतया असफल होता है। 'विशाख' में महा-पिङ्गलक का व्यङ्ग बड़ा ही गर्भित तथा चुटीला है।

उपहास के भी दो भेद हैं। एक तो वह जो विषाक्त बाण की तरह हृदय भेदी रूप में होता है और दूसरा वह जो मीठी चुटकियों के रूप में पाया जाता है। उपहास में घृणा क्रूरता का रूप नहीं धारण करने पाती। 'साहित्य के सपूत' में उन लोगों पर व्यङ्ग किये गये हैं जो साधारण बोल चाल के शब्दों में भी संस्कृत के पर्यायवाची शब्दों को खोज खोज कर स्थान देते हैं।

साहित्यानन्द—'तुम बड़े बेहूदे हो—नहीं ठहरो (जेब से

हिन्दी की पाकेट डिक्शनरी निकाल कर और जल्दी उसे लौटकर) हाँ महा असभ्य हो जो इस तरह रास्ते में—उहुँक इस प्रकार मार्ग में प्रणाम करके मुझे साहित्य का आनन्द लेने में विघ्न डालते हो, जानते नहीं हो कि मैं साहित्यसेवी हूँ।'

साहित्यानन्द के बार बार उहुँक करने पर हँसी आती है।

इसी प्रकार श्री जी० पी० श्रीवास्तव ने 'उलट फेर' में व्यङ्ग कसे हैं। 'चिरागअली'—"लाओ इस बात पर शुकराना।"

रामदेव—अब हुजूर फाँसी की सजा होइगै। अउर ऊपर ते सुकराना देई।

चिरागअली—'हाँ हाँ फाँसी की सजा हुई हमारी बदौलत। इस को गनीमत जानो। अगर हम इतनी कोशिश न करते तो न जाने क्या हो जाता? समझे? लाओ शुकराना।'

उपर्युक्त उद्धरणों में उपहास की व्यापकता का अनुमान हो जाता है। अतः उपहास का विषय सब प्रकार की मूर्खताओं का उद्घाटन है।

हास्य के इस भेद के द्वारा हमारे कहानी लेखक चिरकाल से हिन्दी के पाठकों का मनोरञ्जन करते चले आये हैं। श्री अन्नपूर्णानन्द जी उपहास के सफल लेखक हैं। उनकी कहानियों 'ब्राह्मण भोजन', 'मेरी हजामत' तथा 'बड़ा दिन' में अनेक अवसरों तथा स्थलों पर उपहास का सुन्दर प्रयोग हुआ है। यथा—

"एक बार मेरे एक मित्र रेल से सफर कर रहे थे। उनके बगल में एक मुसलमान सज्जन भी बैठे हुए थे जो लखनऊ के रहने वाले थे—और इसीलिए अवश्य ही कोई नवाब रहे होंगे। लखनऊ स्टेशन पर दोनों आदमियों ने ककड़ियाँ खरीदीं। मुसलमान सज्जन ने बड़ी नफासत के साथ ककड़ियों को छीलकर

छोटे छोटे टुकड़े किये और फिर एक एक टुकड़े को सूँघ कर बाहर फेंकने लगे। मेरे मित्र से न देखा गया। उन्होंने पूछा कि आप इन्हें खाते क्यों नहीं......? उन्होंने उत्तर दिया कि ककड़ियाँ खाने में कोई मजा नहीं, उनकी खुशबू ही असल चीज है।"*

उपहास का सुन्दर स्वरूप हमें श्री रामनरेश त्रिपाठी की कहानियों 'कवियों की कौंसिल' तथा 'दिमाग़ी ऐयाशी' में भी मिलता है। इनमें कवियों का उपहास किया गया है।

'नवाबी मसनद' में नवाब तथा उनके मुसाहिबों का सफल उपहास श्री अमृतलाल नागर ने चित्रित किया है। निरालाजी तथा श्रीभगवतीचरण वर्मा की कहानियों में भी परिष्कृत उपहास के दर्शन होते हैं।

उपहास के इस समाज विरोधी स्वरूप के अतिरिक्त एक और विशिष्टता है। अन्य प्रकार के हास हृदय की ओर संकेत करते हैं परन्तु उपहास बुद्धि को सम्बोधित करता है।

कभी-कभी उपहास को वाग्वैग्ध (Wit) और हास्य (Humour) से विभिन्न करने में कठिनाई पड़ती है। उदाहरणार्थ 'उलट फेर' में देखिए :—

रामदेव—"हुजूर के नाव आये। भूल गयेन।"

चिराग़अली—याद रखना। मेरा नाम चिराग़अली है।

रामदेव—चिराग़ अली...हाँ जउन टिमिर टिमिर बरै। अरे! हुजूर केर नाव मसालअली जउन ध-ध-ध-ध बरै।×

उपर्युक्त वार्तालाप को उपहास कहें या वाग्वैदग्ध, यह नहीं जान पड़ता है। इसी प्रकार 'स्कन्द गुप्त' में 'मुद्गल' के कथन

---

* मेरी हजामत पृष्ठ ४८

× उलट फेर पृष्ठ ११

'मुद्गल मूँग दल रहा है'' को ठीक नहीं कहा जा सकता कि व्यङ्ग है या हास्य।

वाग्वैदग्ध (Wit)—हास्य के भेद, गुण और उद्देश्य पूर्वोक्त परिच्छेदों में कहे गये हैं। हास्य के भेदों के साथ ही वाग्वैदग्ध भी माना गया है। वास्तव में यह हास्य का कोई गुण नहीं है। और शैली मात्र कही जा सकती है। यह शैली इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि यह सबसे अधिक हास्योत्पादक है। यह हास्योत्पादन में अधिक समर्थ है इसी कारण इसका विचार हास्य-रस के अन्तर्गत किया जाता है।

भ्रांत हास तथा हास्य के विशिष्ट गुण होते हैं। परन्तु गुण की दृष्टि से इसमें कोई विशिष्टता नहीं है। इसी कारण इसे हास, भ्रांत, उपहास आदि की श्रेणी में न रखना चाहिए। कुछ विद्वान् भ्रांत हास तथा उपहास का आलम्बन के समान और कुछ आलम्बन में ही वैदग्ध की सत्ता मानते हैं। यह विषय भी विवादग्रस्त है। कुछ विद्वान् आलम्बन में वैदग्ध मानते हैं और कुछ इसके विपरीत आश्रय में विचारपूर्वक देखने से ज्ञात होगा कि आलम्बन में वैदग्ध की सत्ता नितान्त भ्रमपूर्ण है।

जिस प्रकार अलंकार के प्रयोग से काव्य आनन्दमय हो जाता है उसी प्रकार वैदग्ध के प्रयोग से हास की रुचिरता और उसका चमत्कार बढ़ जाता है। जिस प्रकार अलंकार के भेदोपभेद हैं उसी प्रकार वाग्वैग्ध की भी अनेक रीतियाँ हैं। इसकी रीतियों के विषय में यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है।

यदि कहा जाय कि वैदग्ध शब्द, विचार की अभिव्यक्ति की एक विशिष्ट कलापूर्ण तथा बरबस मन को आकृष्ट करनेवाली और आनन्द देनेवाली अपूर्व प्रणाली है तो अनुचित न होगा। वाणी के आश्रित होने से तथा वाणी द्वारा अभिव्यक्त

होने के कारण इसे भी कह सकते हैं। यह वाग्विदग्धता कभी भी स्वतन्त्र रूप में नहीं रहती है। यह कहीं अवलम्बित शब्द पर और कहीं अर्थ के या विचार के आश्रित रहती है। यदि अलंकार का ही सादृश्य ले लें तो भली-भाँति विदित होगा कि जिस प्रकार शब्दालंकार शब्द के आश्रित रहते हैं और अर्थालंकार अर्थ के, उसी प्रकार शब्द वैदग्ध की विदग्धता शब्द के आश्रित और अर्थ वैदग्ध अर्थ के आश्रित रहती है। जिस प्रकार शब्दालंकार में उस विशेष अलंकृत शब्द के स्थान पर यदि दूसरा पर्याय-वाची शब्द रख दें तो उसकी शोभा जाती रहती है उसी प्रकार शब्द वैदग्ध में यदि उस प्रयुक्त शब्द के स्थान पर कोई दूसरा रख दें तो उस वाक्य की विदग्धता नष्ट हो जाती है। जिस प्रकार अर्थालंकार की अलंकारिकता शब्द परिवर्तन द्वारा नहीं नष्ट होती उसी प्रकार अर्थ वैदग्ध (क्योंकि वह शब्द के आश्रित नहीं है) भी शब्द परिवर्तन द्वारा नष्ट नहीं होता। और जिस प्रकार उपमा आदि अलंकारों के प्रयोग से तथा अन्य काव्योचित गुणों के अभाव में वह रचना चित्त रमानेवाली नहीं होती उसी प्रकार हास्योत्पादक अंश के बिना वैदग्ध की कोरी प्रणालियों का हास की दृष्टि से कोई महत्व नहीं है। अलंकारों का भी यही रूप है। जिस प्रकार अलंकार चित्ताकर्षक होते हैं उसी प्रकार वाग्वैदग्ध भी हमारे चित्त को आकर्षित करते हैं और मनोरंजन का पूर्ण रूप से ध्यान रखते हैं। अतः यदि वाग्वैदग्ध को भी एक विशिष्ट अलंकार या अलंकार की एक प्रणाली मान लें तो वाग्वैदग्ध विषयक भ्रम का बहुत कुछ निराकरण हो जाय। इस अलंकार या प्रणाली का बहुत बड़ा तथा सबसे महत्वपूर्ण गुण यह है कि इसके प्रयोग से हँसी आती है।

जिस प्रकार भिन्न-भिन्न देशों में काव्य के अलंकारों का

प्रयोग भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है उसी प्रकार वैदग्ध में भी प्रयोग की अनेक पद्धतियाँ प्रचलित हैं। इतना होने पर भी दो एक पद्धतियों का प्रयोग समान रूप से पाया जाता है। इन्हीं समान पद्धतियों या रीतियों का उल्लेख उचित होगा। इन समान पद्धतियों में भी यमक, श्लेष तथा शाब्दी व्यंजना के आश्रित वैदग्ध का सबसे अधिक प्रचार है। इसके अतिरिक्त हमारे साहित्य शास्त्र में हास्य विषयक (वस्तुतः वैदग्ध विषयक) विवेचन नर्मन् वृत्ति के अन्तर्गत किया गया है। प्रपंच, वाक्केलि, अवस्यथित तथा नालिका आदि नामकरण करके उनके भेदोपभेद की कल्पना तथा विवेचना की गयी है।

शब्द वैदग्ध मुख्यतः यमक के आश्रित रहता है। इसमें पहले एक शब्द अपना निश्चित अर्थ सूचित करता है। दूसरी बार उस शब्द को विभक्त कर एक नया अर्थ और निकाला जाता है। ये दोनों भिन्न अर्थ वैदग्ध तथा हास्य के कारण होते हैं।

शाल्व युद्ध नाटक में थोड़ा परिवर्तन कर इसी यमक का प्रयोग हुआ है।

आगन्तुक—"तुम्हें कितना वेतन मिलता है?"

सिपाही—"वेतन मुझे कुछ नहीं मिलता।"

आगन्तुक—"अच्छा तुम्हें वेतन चाहिए?"

सिपाही—"नहीं, भइया नहीं, वेतन अर्थात् कामदेव। नहीं बाबा नहीं, मुझे न चाहिए।"*

यहाँ पर वेतन शब्द के दो अर्थ हँसाते हैं। भारतेन्दु बाबू ने इसी प्रकार का प्रयोग अपने 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' में किया है—

---

* शाल्व युद्ध नाटक

विदूषक—"क्यों वेदान्ती जी आप मांस खाते हैं या नहीं ?"

वेदान्ती—"तुमको इससे कुछ प्रयोजन ?"

विदूषक—"नहीं, कुछ प्रयोजन नहीं है। हमने इस वास्ते पूछा कि आप वेदान्ती अर्थात् बिना दाँत के हैं सो आप भक्षण कैसे करते होंगे ?"†

यहाँ पर शब्दों को दो भागों में विभक्त कर उसके दो अर्थ कर लिए गये हैं।

यमक की ही भाँति श्लेष तथा शाब्दी व्यञ्जना का भी प्रयोग होता है। श्लेष में दोनों अर्थों में यह पता नहीं चलता कि उस प्रयुक्त स्थल पर प्रयोक्ता का किस अर्थ से आशय है। दोनों अर्थ समान रूप से प्रयुक्त जान पड़ते हैं और हँसाते हैं। शाब्दी व्यञ्जना में यद्यपि प्रयुक्त शब्द के दो अर्थ होते हैं परन्तु प्रयोक्ता का सङ्केत केवल एक ओर होता है।

नर्मन वृत्ति पात्र की हास्योत्पादक वक्तृता, वेष तथा अभिनय के आश्रित है। भारती वृत्ति के अन्तर्गत प्रपञ्च में कथोपकथन द्वारा पात्र एक दूसरे के अवगुण हास्यपूर्ण ढङ्ग से बताते हैं। वाक्केलि में पात्र हास्यपूर्ण उत्तर प्रत्युत्तर द्वारा मनोरञ्जन करते हैं। इसी को प्रचलित भाषा में 'हाज़िर जवाबी' कहते हैं। इसका प्रयोग वैदग्ध लाने के हेतु बहुत किया जाता है। अवस्यन्दित में किसी के व्यक्त विचार का दूसरा ही अर्थ किया जाता है। ये ही वैदग्ध की कुछ रीतियाँ हैं जिनके प्रयोग से हँसी आती है।

इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि हम वैदग्ध के स्वरूप के विषय में कुछ जान लें। मनोवैज्ञानिक इसे बालकों की शब्द-क्रीड़ा का चरम विकसित रूप बताते हैं। उनका मत है कि वैदग्ध

---

† वेदिकी हिंसा हिंसा न भवति

के प्राथमिक स्वरूप का दर्शन हमें बालकों की शब्द-क्रीड़ा में ही मिलता है जिसके प्रयोग में नये शब्द सीखते हुए बालक को आनन्द प्राप्त होता है। वह बालक शब्दों की अभिधा से बिना परिचित हुए कई एक शब्दों का एक साथ प्रयोग करता और प्रसन्न होता है। मनोवैज्ञानिक इस प्रसन्नता का कारण विवेक की मितव्ययिता बताते हैं। उनके अनुसार वर्ण साम्य तथा ध्वनि साम्य की आवृत्ति मानसिक शक्ति के व्यय को बचाती है और इस मितव्ययिता के कारण प्रसन्नता होती है। यही बालकों की शब्द-क्रीड़ा वैदग्ध का सर्वप्रथम स्वरूप है।

बालक धीरे धीरे बढ़ने लगता है। उसके शारीरिक विकास के साथ साथ मानसिक तथा हार्दिक विकास भी होता रहता है और मानसिक विकास के ही साथ रुचि परिवर्तन भी होता है तथा उसके विवेक में भी विकास होता है। विवेक में विकास होने पर बुद्धि बालक को ऐसे कार्य करने से रोकती है। वह इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग बन्द कर देता है। इसी परिवर्तन के साथ ही उसके आनन्द में भी अवरोध होता है। आनन्द के इस अवरोध को हटाने के लिए इस बात की आवश्यकता पड़ती है कि वह निरर्थक अथवा असंगत न जान पड़े। कहने का अभिप्राय यह है कि शब्द संघटन चाहे कितना ही असंगत और निरर्थक क्यों न हो उसमें कुछ न कुछ सार्थकता अवश्य होनी चाहिए। इस आवश्यकता की पूर्ति विनोद द्वारा होनी चाहिए क्योंकि विनोद भरे वाक्यों से कोई न कोई अर्थ अवश्य निकलता है। इस अर्थ में नालिका शब्द हमारे साहित्य शास्त्र में प्रयुक्त है। विनोद में दो बातें साथ-साथ चलती हैं। एक ओर पुरानी शब्द क्रीड़ा रहती है जिससे आनन्द का उद्रेक होता है और दूसरी ओर उनकी निरर्थकता विवेक को खटकती भी नहीं है क्योंकि उन शब्दों में

सार्थकता छिपी रहती है। ऐसे शब्दों का प्रयोग विनोद या नालिका कहलाता है। इसी को अंग्रेजी में Jest कहते हैं। यह वाग्वैदग्ध तक पहुँचने की दूसरी सीढ़ी है।

वैदग्ध भी इसी रीति का आश्रय ग्रहण करता है। श्लेष, यमक आदि जो रीतियाँ पहले गिनायी गयी हैं उन्हीं से इनका निर्वाह होता है। श्लेष तथा यमक से एक ओर तो पुरानी शब्द-क्रीड़ा का आनन्द मिलता है और दूसरी ओर उनके अर्थ में सार्थकता भी होती है जिसके कारण बुद्धि भी सन्तुष्ट रहती है। यहाँ प्रसन्नता का कारण मितव्ययिता है। वैदग्ध और नालिका दोनों ही पद्धतियाँ इसका आश्रय ग्रहण करती हैं। अतः दोनों का भेद जानना आवश्यक है। यह भेद अत्यन्त सूक्ष्म है। फल-स्वरूप कभी कभी विनोद वैदग्ध और वैदग्ध विनोद कहा जाता है। विनोद में केवल इतना ही आवश्यक है कि शब्द संयोग में कुछ न कुछ सार्थक अर्थ हो (जिससे बुद्धि सन्तुष्ट रहे)। उसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसका अर्थ नवीन, मूल्यवान् और अच्छा ही हो। यदि उस अर्थ में कुछ अधिक तथ्य हो, उसका कुछ मूल्य हो तो वही विनोद वैदग्ध में परिवर्तित हो जाता है। वैज्ञानिक के शब्दों में विवेक की मितव्ययिता वैदग्ध को जन्म देती है।

वाग्वैदग्ध का प्रयोग दो अभिप्रायों से किया जाता है। प्रथम प्रयोग में आनन्द प्रीप्ति के अतिरिक्त और कोई प्रयोजन नहीं रहता है और दूसरे में कोई न कोई मतलब निहित रहता है। इसका अभिप्राय या तो अश्लीलता का उद्घाटन (और उसके द्वारा आनन्द प्राप्ति) या आक्षेप (ताने द्वारा आनन्द प्राप्ति) रहता है। अश्लीलता का उद्घाटन अशिक्षितों द्वारा अधिक होता है और आक्षेप तो, हमें दैनिक जीवन में यदाकदा सुनने ही पड़ते

हैं। साभिप्राय वैदग्ध में आक्षेपयुक्त वैदग्ध की प्रधानता रहती है। इसी प्रधानता के कारण कई विद्वान् उपहास को अलग न मानकर इसी वैदग्ध के अन्तर्गत आक्षेप में स्थान देते हैं। यह बहुत अंशों तक ठीक भी है। उपहास वाणी का आश्रय लेकर छिपे शब्दों में समुदाय अथवा संस्था पर आक्रमण करता है। कभी-कभी उपहासात्मक वाक्य इस आक्षेपयुक्त वैदग्ध से भिन्न नहीं किया जा सकता है। 'प्रसाद' जी के 'स्कन्दगुप्त' नाटक में मुद्गल का निम्नलिखित स्थल संदिग्ध है, यही नहीं कहा जा सकता कि यह वैदग्ध है या उपहास ...... "आदित्य में गर्मी नहीं है ...... समस्त भारत हूणों के चरणों पर लोट रहा है। और मुद्गल मूँग दल रहा है।" इस स्थल पर "मुद्गल मूँग दल रहा है" उपहास भी है और वाग्वैदग्ध भी। *

वैदग्ध की एक विशिष्टता उसकी सामाजिकता है। हास तथा हास्य के विपरीत इसमें तीन पात्रों की आवश्यकता होती है। प्रथम वह जिसके द्वारा प्रयोग किया जाय, दूसरा वह जिसके लिए प्रयोग हो और तीसरा वह जिसके द्वारा सुना जाय। वैदग्ध में यह तीसरा पात्र बहुत आवश्यक है।

वैदग्ध हास्य का अत्यन्त उत्कृष्ट तथा कलापूर्ण अङ्ग है जिसके कथोपकथन में नव-जीवन का सञ्चार हो जाता है। वैदग्ध का प्रयोग, भाषा तथा शैली पर पूर्ण अधिकार की अपेक्षा रखता है। कुशल नाटककार ही इसके प्रयोग में सफलता पाते हैं। यद्यपि इसका प्रयोग कथोपकथन द्वारा आकर्षक हो जाता है फिर भी अतिशय प्रयोग स्वाभाविकता तथा सजीवता नष्ट कर देता है।

---

* स्कंदगुप्त पृष्ठ १४३

हास, हास्य तथा वाग्वैदग्ध का सम्बन्धः— अब तक के विवेचन मे यही जान पड़ता है कि हास (Comic), हास्य (Humour) और वैदग्ध (Wit) एक दूसरे से पूर्णतया भिन्न हैं। यह धारणा उस समय और भी दृढ़ हो जाती है जब हम वैदग्ध तथा हास की तुलना करते हैं। हास में केवल दो ही पात्रों की आवश्यकता होती है— प्रथम आश्रय और द्वितीय श्रोता। आश्रय के हास्य का कारण अथवा लक्ष्य पात्र की हास्योत्पादक स्थिति, वेष या चाल ढाल है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि हास्य की प्रहसनीयता परस्थ है। आलम्बन की स्थिति को अपनी स्थिति से तुलना करने पर उसकी असंगति, अपकर्ष आदि के कारण उसमें प्रसन्नता और हास्य का उद्रेक होता है। तुलना करने पर यह प्रकट होता है कि विचार की मितव्ययिता हास्य को जन्म देती है। विचार की मितव्ययिता इस प्रकार होती है कि हास के आलम्बन का आचरण आवश्यकता से अधिक बढ़ा-चढ़ा होता है। आश्रय की चेष्टा उतनी बढ़ी चढ़ी नहीं होती है। आलम्बन की अपेक्षा आश्रय की मानसिक शक्ति का व्यय होता है परन्तु बहुत कम। इस प्रकार विचार की मितव्ययिता होती है।

इसके विपरीत वैदग्ध मे तीन पात्रों की आवश्यकता है। इसके लिए आश्रय, आलम्बन के सिवाय श्रोता की सबसे बड़ी आवश्यकता है। वैदग्ध में हास के विपरीत आलम्बन इतना आवश्यक नहीं है। वैदग्धकार श्रोता को अपनी वैदग्धपूर्ण रचना सुना कर स्वयं आनन्दित होता है। साथ ही साथ वैदग्धकार श्रोता द्वारा अपनी रचना की श्रेष्ठता की परीक्षा करता है। श्रोता की हँसी पर ही उसकी सफलता निर्भर रहती है। वैदग्ध की रचना परिश्रम से होती है पर इसके विपरीत हास आलम्बन में पाया जाता है, उसकी रचना नहीं होती है।

उपर्युक्त तुलना से तो यही बात प्रकट होती है कि वाग्वैदग्ध तथा हास दोनों का मार्ग एक दूसरे से पूर्णतया भिन्न है। उनमें समानता का कोई भी चिह्न नहीं है किन्तु बात यह नहीं है। वैदग्ध तथा हास में पारस्परिक तथा निकट सम्बन्ध है। हास के हेतु वैदग्ध सदैव नवीन सामग्री प्रस्तुत करता रहता है। बिना वैदग्ध के हास सदैव सफल ही होता है। वैदग्ध पूर्ण रचना की सार्थकता को छिपाने के हेतु हास आवरण का काम करता है। प्रायः हास तथा हास को पहचानने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। यह एक कठिन समस्या हो जाती है जब हम यह निश्चित नहीं कर पाते कि अमुक दृष्टांत हास है अथवा वैदग्ध (Qrof. Sigm. Freud) फ्रायड का भी यही कथन है कि हास तथा वैदग्ध में बहुत ही सूक्ष्म अन्तर है। *

इसी प्रकार हास तथा हास्य एक दूसरे से पूर्णतया सम्बद्ध हैं। करुणाजनक स्थलों पर भी करुणा के स्थल पर जो हँसी आती है वह हास्य ही है। सोमवार को फाँसी पर चढ़ते हुये बन्दी ने कहा था, "सप्ताह का प्रारम्भ शुभ ही हुआ है।" S वस्तुतः उसके लिये इस सप्ताह का कोई भी मूल्य नहीं है। वह जब हँसता हुआ कहता है तो हमें भी हँसी आ जाती है यदि वह रोकर कोई बात कहता तो हम दयार्द्र हो जाते।

करुण स्थिति में भी हास्य का होना एक विचित्र बात है। इस सम्बन्ध में भी मनोवैज्ञानिकों के नवीन अनुसन्धान हैं। मनोवै-

* "......Wit occasionally reopens in accessible sources of comic and that comic often serves as a facade to replace the fore-pleasure usually produced by the well-known technique."

S "The week has begun well."

ज्ञानिकों का कथन है कि करुणा प्रदर्शन करने के हेतु एकत्रित मानसिक शक्ति उसे हँसते देखकर व्यर्थ हो जाती है। करुणा की आवश्यकता न रहने से उस भाव प्रदर्शन के निमित्त उस शक्ति का व्यय बच जाता है। इस प्रकार मानसिक शक्ति की मितव्ययिता हास्य को जन्म देती है। किसी भी भाव प्रदर्शन की मितव्ययिता हास्य को उत्पन्न करती है परन्तु साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि उसकी विरोधी शक्तियाँ न हो जाँय जो उसको दबा दें अथवा शान्त कर दें। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार दोनों का उद्गम स्थान एक ही है।

हास, हास्य तथा वैदग्ध के विषय में मनोवैज्ञानिकों का कथन भी ध्यान देने योग्य है। उनका कथन है कि मितव्ययिता ही तीनों प्रकार की हँसी—हास, हास्य तथा वैदग्ध—का कारण है।

इस विषय में मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्त इस प्रकार कहे जा सकते हैं कि—

१—विचार की मितव्ययिता हास का कारण है
२—भाव ,, ,, हास्य ,, ,,
३—विवेक ,, ,, वैदग्ध ,, ,,

जिस प्रकार विचार, भाव तथा विवेक में पारस्परिक घनिष्टता तथा सम्बन्ध है उसी प्रकार हास, हास्य तथा वैदग्ध एक दूसरे से सम्बद्ध है और एक दूसरे के सहायक के रूप में आते हैं।

इन तीनों—हास, हास्य तथा वैदग्ध के वर्तमान रहने पर हमें हँसी आती है। इन तीनों के गुण विद्यमान रहने पर हँसना हमारे लिये कोई नयी बात नहीं है पर कभी कभी इनके कारण उपस्थित रहते हुये भी दर्शकों अथवा सामाजिकों को हँसी नहीं आती है। इससे यह बात प्रकट होती है कि कुछ ऐसी भी परिस्थितियाँ होती हैं जो हास्यानुकूल होती हैं और कुछ ऐसी भी

जो हास्य के प्रतिकूल । हँसाने के हेतु इनका भी ज्ञान आवश्यक है। हास्यानुकूल अवसर किसी न किसी प्रकार मनुष्य बना ही लेता है । मनुष्य जब प्रसन्न रहता है तो प्राय: हँसता है। और उस अवस्था में उसका हँसना स्वाभाविक तथा उचित भी है।

हास्य की इच्छा तथा आशा भी हास्यानुकूल अवसर का सृजन करती है। चार्ली चैपलिन (Charle bhaplin) को चित्रपट पर देखते ही हास्योत्पादन की आशा है और धीरे धीरे उसकी हास्योत्पादन की चेष्टा के प्रयास के बिना ही हँस पड़ते हैं। अथवा जब हम किसी मनुष्य में कोई विचित्रता देखने के आदी हो जाते हैं तो उसके मिलने पर उसे देखते ही हमें सहसा हँसी आ जाती है।

हास्य के प्रतिकूल वह अवसर होता है जब लोग किसी अन्य प्रबल भाव द्वारा आक्रान्त रहते हैं। अति करुणा अथवा अति क्रोध हमें हँसने में कदापि सहायक नहीं हो सकते हैं।

इसी प्रकार खोजने पर हमें हास्य के अनेक अनुकूल तथा प्रतिकूल अवसर मिलते हैं। लेखकों को आवश्यक है कि वे इस बात का ध्यान रक्खें।

हास्य तथा करुण रस का सम्बन्ध

"हास्य तथा करुणा-रस का सम्बन्ध"

मानव जीवन से हास तथा रुदन का बड़ा ही घनिष्ट सम्बन्ध है। एक क्षण हम दुःख के कारण रोते हैं तो दूसरे क्षण हम दुःख निवारण हो जाने के कारण प्रसन्नवदन खिलखिला उठते हैं। एक क्षण पूर्व विषाद हमारे मुख को म्लान किये रहता है, तो दूसरे क्षण हर्ष का प्रकाश विराजमान हो जाता है। हमारे हँसने तथा रोने का समय बँधा नहीं है। हम किसी समय रोने लगते हैं और अभी हमारे कपोल से आँसू के चिह्न भी नहीं मिटे हैं कि हमारे नेत्र हँसी से चमक उठते हैं।

हमारे जीवन में हास तथा करुणा का इतना घनिष्ट सम्बन्ध होते हुये भी साधारणतः जनता में यह दृढ़ धारणा फैली हुई है कि हास्य तथा करुण भिन्न-भिन्न दो प्रकार के रस हैं, जिनका एक दूसरे से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। साधारण जनता में यह धारणा है कि हास्य-रस का उपयोग केवल सुखान्त नाटकों में ही हो सकता है और करुण दुखान्त नाटकों (Tragedies) में। हास्य का प्रयोग अनुचित ही नहीं, वरन् असम्भव तथा हानिकर होगा, क्योंकि इस प्रकार के नाटकों में हास्य के प्रयोग से करुणा की गम्भीरता नष्ट हो जायगी।

एक और भ्रमपूर्ण धारणा जनता में फैली है। वह यह है

कि दुखान्त (Tragedy) नाटक और करुण नाटक एक दूसरे के पर्यायवाची हैं। वह हँसी को सुख तथा आनन्द का द्योतक मानती है। इसी कारण उसे दुखान्त नाटकों में हास्य का प्रयोग असंगत जान पड़ता है। वास्तव में हास्य सदा हर्ष का सूचक नहीं होता है। मलिनता में भी प्रायः हँसी आ जाती है।

जीवन के सबसे अधिक निकट साहित्य का नाटकीय अंग है। कविता, निबन्ध आदि दूसरे अंग मानव जीवन को ही अपना आधार बनाकर अस्तित्व स्थापित करते हैं। फिर भी नाटक इन सबसे अधिक निकट है। नाटक की भावना मानव-जीवन की भावना है। नाटक की परिस्थिति मानव-जीवन की परिस्थिति है। नाटक की घटनायें मानव-जीवन की घटनाएँ हैं। यह अत्युक्ति न होगी, यदि हम जीवन की उत्कृष्ट कलापूर्ण और शोभा विधायक प्रतिच्छाया को नाटक का सार कहें। नाटकों में चरित्र-चित्रण संसार के मनुष्यों के चरित्र के आधार पर ही किया जाता है। अतः जिस प्रकार हमारे जीवन में सुख व दुःख साथ ही लगे रहते हैं उसी प्रकार नाटक में भी। यदि हास्य तथा रुदन दोनों ही हमारे जीवन में समान रूप से सहयोग न दें, तो फल यह होगा कि हमारे लिये हास तथा रुदन दोनों ही नैतिक वस्तुयें बनकर महत्त्वहीन हो जायँगी। मनोवैज्ञानिकों का मत भी जीवन के इस साधारण अनुभव के पक्ष में ही है। मि० सली (Mr. Sully) का निम्नलिखित कथन ध्यान देने योग्य है :—

"हँसी तथा रुदन पास ही पास हैं। एक से दूसरे पर जाना बहुत सहल है। जबकि वृत्ति एक कार्य में पूर्ण रीति से संलग्न हो तो कुछ उसीके समान दूसरे कार्य पर बड़ी जल्दी जा सकती है। (Plato) को अपने (Philibus) में हँसी में सुख तथा दुख दोनों ही मिले हैं। जब उपन्यासों में एक करुण वर्णन पढ़ते-

पढ़ते एकदम हास्योत्पादक स्थल पर आते हैं, तो वह हमें असंगत तथा अनुचित नहीं जान पड़ता है। तो फिर नाटक में ही क्यों यह असुविधाजनक प्रकट होगा।"

यदि संयोगवश हास्य तथा करुण में पूर्णरूपेण भिन्नता होती और वे एक दूसरे के विरोधी होते तो नाटककार की लेखनी एक ही पर उठ सकती, और वह एक ही प्रकार के नाटक लिखने में सफल होता। उसके नाटक सर्वांगीण न हो पाते और एकांगी व अधूरे रह जाते। पर इसके विपरीत एक ही नाटककार ने उत्कृष्ट करुणा तथा सुखान्त नाटक भी लिखे हैं। 'भवभूति' ने जहाँ 'उत्तर रामचरित' लिखा है वहीं उसकी लेखनी से 'मालतीमाधव' की भी रचना हुई है। शेक्सपियर (Shakespare) ने 'एज़ यू लाइक इट' (As you like it) के साथ ही 'हेमलेट' (Hamlet) व 'मैकबिथ' (Macbeth) की भी रचना की है। अतः निश्चय ही से एक लेखक दुखान्त व सुखान्त दोनों प्रकार के नाटक लिख सकता है। इस विषय पर इँग्लैण्ड के सुप्रसिद्ध नाटककार 'ड्राइडन' (Dryden) की सम्मति पढ़ने योग्य है:—

"(नाटकों की) निरन्तर की गम्भीरता मस्तिष्क को आक्रान्त किये रहती है। हमें अपने मस्तिष्क को कभी-कभी उसी तरह स्वस्थ तथा सजीव बना लेना चाहिए जिस प्रकार हम अधिक सुविधापूर्वक चलने के लिए मार्ग में ठहरते हैं। करुणा से मिश्रित हास्योत्पादक स्थल हमारे ऊपर उसी प्रकार प्रभाव डालता है

"The fact is that tears and laughter be in close proximity. It is but a step from one to the other. The motor centres engaged when in the full swing of one mode of action may readily pass to the other and partially similar action."

जिस प्रकार कि अंकों के बीच में संगीत (का विधान) और इससे हमें लम्बे कथावस्तु तथा कथोपकथन में—चाहे वह अत्यन्त विशिष्ट हो और उसकी भाषा अत्यन्त सजीव हो—विश्रान्ति सी मिलती है। इसलिए हमें इस बात से सहमत करने के लिए अधिक युक्ति-युक्त तर्कों की आवश्यकता है कि करुणा तथा हास्य का सम्मिश्रण एक दूसरे को नष्ट कर देता है। इस बीच में हम इसे अपनी जाति के सम्मान का कारण समझते हैं कि हम लोगों ने अभिनय के लिए एक ऐसी शैली का सृजन किया है न वह प्राचीनों को मालूम थी और न अर्वाचीनों को और जो करुण तथा हास्य का सम्मिश्रण है"।

जिस करुण व हास्य के सम्मिश्रण को साधारण मनुष्य अनुचित और असंगत मानते हैं उसे 'ड्राइडन' महाशय स्वजाति के अभिमान का कारण समझते हैं।

"A continued gravity keeps the mind too much bent; we must refresh it some times as we wait in a Journey, has the same effect upon us which our Musick has betwixt the acts, which we find a relief to us from the beat Plots and language of the stage if the discourse have been long. I must, therefore, have stronger argument ere I am convinced that compassion and mirth in the same subject destroy each other, and in the mean time cannot but conclude to the Honour of our nation that we have invented, increased and perfected a more pleasant way of writing for the stage than was ever known to the Ancients or modern of any nation, which is Tragedy Comedy."

जो प्रकृति की सत्यता (Truth of Nature, Fidelity to Nature) को मानने वाले हैं तथा प्रत्येक अंग में जीवन की आलोचना खोजते हैं; उन्हें हास्य तथा करुण के सम्मिश्रण पर नाक भौं सिकोड़ने की आवश्यकता-नहीं है। जीवन में हँसी और रुदन एक दूसरे से मिले हुये हैं। डाक्टर जानसन के विचार से निम्नलिखित कथन पठनीय है।

हास्य का प्रयोग नाटक को और भी प्रभावोत्पादक बना देता है। 'ए० निकाल' का निम्नलिखित कथन विचारणीय है :—

"I know not whether he that professes to regard no other laws than those of Nature, will not be inclined to receive tragic comedy to his protection whom however generally condemned, her own laurels have hitherto shaded from the fulmination of critcism. For what is there in the mingled drama which impartial reason can condemn? The connexion of important with trivial incidenters, since it is not only common but perpetual in the world, may surely be allowed upon the stage, which pretends only to be the mirror of life. The improperity of suppressing passions before we have raised them to the intended agitation, and of diverting the expectation from an even which we keep suspended only to raise it, may be speciously urged. But will no experience show this objection, to be rather subtle then? Is it not certain than Tragick and comick affections have been moved alternately with equal force and that no plays have been oftener filled the eye with tears and the breast with palpilation, than those which are variegated with interludes of mirth."

हास्य का कुशल प्रयोग करुणा को और भी प्रभावोत्पादक बना देता है। करुण नाटक के बीच में हास का विधान पथ में शान्ति-दायक स्थल के समान है। हास दुःखमय वातावरण या गम्भीरता में अवगाहन करते हुये मस्तिष्क को शान्ति प्रदान करती है। इस शान्ति के पश्चात् करुणा की जो छाप पड़ती है, वह प्रभावोत्पादक होती है। नाटक में जनता अथवा दर्शकों को बराबर आकृष्ट रखने के हेतु हास का विधान बड़ा उपयोगी है। करुणा की गम्भीर परिस्थिति में दर्शक का मन उचट जाता है, चाहे वह कितनी ही वास्तविक तथा स्वाभाविक क्यों न हो? ऐसी परिस्थिति में हास का प्रयोग नाटकों में अनिवार्य है। हास्य दृश्य से दर्शकों का मनोरंजन तथा रुचि दोनों ही रहती हैं।

इसी दृष्टि-कोण से "प्रताप-प्रतिज्ञा" नाटक के हास्य का सुन्दर विधान रक्खा गया है। यह नाटक आद्योपान्त गम्भीर है। परन्तु इसकी गम्भीरता असहनीय अथवा उपहासास्पद नहीं होने पाई है। तीसरे अंक का दूसरा दृश्य जिसमें हास्य की योजना की गई है दो गम्भीर दृश्यों के बीच में है। महाराणा प्रताप की हल्दी घाटी में पराजय दर्शकों को क्षुब्ध कर देती है। इसी समय भील राज का प्रवेश किंचित-मात्र शान्तिप्रद होता है। परन्तु पूर्ण-स्थिरता नहीं मिलती है। इसके बाद के दृश्य में सामाजिकों की गम्भीरता और क्षुब्धता गंगासिंह की मस्ती का नुस्खा सुनने से दूर हो जाती है। मदारखाँ वह नुस्खा जानने के हेतु उत्सुक है।

"It (e. comic) may be employed as a contrast to the tragic. In this case it very seldom raises a laugh. The porter scene in Macbeth is comic, but it is grim sort of comedy that serves to make more terrible the events taking place within the castle."

दर्शकों का भी ध्यान तथा औत्सुक्य उसी ओर है। इसी कारण उनकी गम्भीरता और भी घट जाती है। गंगासिंह अपनी धुन में दूसरा ही दास्तान छेड़ देते हैं। इस पर मदार खाँ खीझ कर चला जाता है। दर्शकों को बाद में जब वह नुस्खा मालूम होता है तो उनकी हँसी नहीं रुकती :—

मदारखाँ—'यह क्या ? यह क्या ?'

गंगा०—'यही हमारे बाबा का बताया हुआ नुस्खा है।'

म०—'आखिर इसका कुछ नाम-धाम, पता-ठिकाना।'

गंगा०—'ईश्वर उनकी आत्मा को शांति दे। बेचारे ने मुझे बड़े कष्ट से पाला था। इतने कष्ट से कि जब आज भी उसकी याद आ जाती है तो आज भी सिर्फ रोंगटे ही नहीं, सिर के बाल भी खड़े हो जाते हैं।'

मदा०—'अरे, यार उड़ो मत ! पहिले यह नुस्खा बताओ।'

गंगा०—'हाँ, हाँ, सुनते चलो। तो उस बेचारे ने मुझे बड़े कष्ट से पाला था, क्योंकि मेरे माता-पिता तो (करुण स्वर में) मेरे पैदा होने के पहिले ही मर गये थे।'

म०—'यह रोना गाना तो रहने दो, पहिले सीधे से वह नुस्खा बताओ।'

गंगा०—'यहाँ तक कि मुझे उनकी सूरत, शक्ल, बोली-चाली, चाल-ढाल कुछ भी याद नहीं।'

मदा०—'हटो जी, यह कहाँ का क़िस्सा सुनाने लगे ?'

गंगा०—सुनते जाओ, हाँ, तो बेचारे बाबा ने उस ग़रीबी की हालत में मेरे लिये असल राजपूत होते हुये भी एक गड़रिये की नौकरी की। उसके १५ भेड़ें, १२ बकरियाँ थीं। लम्बी-लम्बी ऊन वाली, छोटे-छोटे सींग वाली।

मदार०—'बस, बस, रहने दो यह दिल्लगी। मेरे पास इतना

वक्त नहीं कि तुम्हारी यह भाट जैसी पगड़ी या शैतान की आँत जैसी लम्बी कहानी सुनता रहूँ। दिन भर बैठे-बैठे इन दिवालों को सुनाया करना।'

गंगा०—'अकड़ते क्यों हैं जनाब ? एक तो मैं आपको मस्ती-बुजुर्गी का नुस्खा बतलाऊँ, ऊपर से आप मुझे यह खरी-खोटी सुनायें। जाइये, वहीं जाकर जूतियाँ चटखाइए, या तुकबन्दियों के कौवे उड़ाइए। यहाँ तो एक ही नुस्खे में माला-माल हैं। बड़े-बड़े बादशाह भी अगर इसका मजा ले लें तो मुझे उस्ताद मानने लगें। (मदार खाँ का प्रस्थान। गंगासिंह अफीम की गोली निकालता है।)

गंगा०—'जाओ, मियाँ मिट्ठू। तुम क्या जानो, इस रजपूती नुस्खे का मजा। तुम अगर बन्दर हो तो यह अदरक है—यह एक-दम पुश्तैनी है पुश्तैनी। इसके एक-एक अक्षर में एक-एक लोक का राज्य भरा है। 'अ' में आकाश 'फी' में पाताल और 'म' में मर्त्यलोक। गले के नीचे उतरते ही तीनो लोकों का राज्य चरणों में आकर झुक जाता है।........पृथ्वी आकाश में उतर आती है। और आकाश धीरे-धीरे पृथ्वी की ओर चढ़ने लगता है।' (पीनक लेता है)।

गंगासिंह को अभिनय करते देखकर और भी यह दृश्य हास्यजनक हो जाता है। इस दृश्य के बाद ही तीसरे दृश्य में हमारे समक्ष महाराणा प्रतापसिंह के आत्मिक पतन का दृश्य है। यह पराजय हल्दी घाटी से भी कहीं अधिक हमें उदासीन तथा दुखी बना देती है। राणा हारकर अकबर के पास संधि पत्र भेजते हैं। हल्दी घाटीवाले दृश्य में केवल वाह्य परिस्थिति है और इसमें आन्तरिक। इसके पहले हँस लेने के कारण हमारा चित्त साफ रहता है। अतः इस दृश्य की गम्भीर परिस्थितियों का विशेष प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार नाटककार हास्य की योजना द्वारा

सामाजिकों पर परिस्थिति की गम्भीरता द्योतित कर देता है। इसके विपरीत यदि आद्योपान्त गम्भीर कथानक ही चलता रहे तो इतना गहरा प्रभाव कदापि न पड़ेगा।

उत्कृष्ट करुण और उत्कृष्ट सुखान्त नाटकों में भी कुछ समानता है। नाटक में प्रधान अंग है कथावस्तु तथा चरित्र-चित्रण। प्रत्येक नाटक में चाहे वह सुखान्त हो या करुण—कथावस्तु की अपेक्षा चरित्र-चित्रण में अधिक ध्यान दिया जाता है। जिस प्रकार दुखान्त नाटक में नायक के चरित्र के कारण आई हुई विफलता और विपत्ति को किसी घटनाचक्र के कारण आई हुई विफलता और विपत्ति की अपेक्षा प्रधानता दी जाती है। ठीक उसी प्रकार सुखान्त नाटकों में भी चरित्र के आश्रित हास्य को घटना के आश्रित हास्य की अपेक्षा प्रधानता दी जाती है। बाह्य घटना-विधान के कारण जो रुचिरता नाटकों में आती है, वह स्थायी और गम्भीर नहीं होती। चरित्र-चित्रण की प्रधानता सुखान्त और दुखान्त दोनों प्रकार के नाटकों की समानता का कारण है।

समानता का दूसरा कारण है बाह्य विरोध की अपेक्षा अन्त-र्वृत्तियों के विरोध की प्रधानता। उत्कृष्ट दुखान्त नाटकों में किसी शत्रु या समाज के विपक्षी (Quter Conflief) की अपेक्षा नायक का आन्तरिक विरोध अधिक रुचिर होता है। 'शाहजहाँ' नाटक में शाहजहाँ की मानसिक अवस्था तथा मानसिक द्वन्द्व हमको अधिक आकृष्ट करता है। सुखान्त नाटकों में भी बाह्य विरोध की अपेक्षा आन्तरिक विरोध की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है।

All these are outword conflicts struggles between an individual and society between two individual or between the sexes. There is one type of inner conflicts (in comedy)

चरित्र चित्रण और आधुनिक अन्तर्मुखी प्रवृत्ति (In wardness) के अतिरिक्त एक व्यापकत्व का भाव होता है जो समान रूप से प्रत्येक उत्कृष्ट नाटक में अपेक्षित होता है। नाटकों के इस व्यापकत्व के भाव पर 'ए० निकोल' (A.nicoee) का निम्नलिखित कथन पठनीय है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हास्य व करुणा में कोई भी ऐसा विरोध नहीं है जिसके कारण लोग ऐसा समझें। हास्य का विधान करुणा को और भी प्रभावशाली बना देता है।

---

between two fancies leading toward what is knoew as espirit or wit, wit arises out of a conflict of two ideas or of an idea and an object."

"Beyond the characterisation and the inwardness' there must go some general atmosphere or spirit, which, as it were enwraps the whole development of the "Fables" and tings the characters with a peculiar and dominating hue. This spirit or atmosphere is called University. It is a spirit of University that marks out every great drama

........There is a sense in all great comedy as there is in all tragedy, that the events and characters are isolated. They are related in some way or other to the world of ordinary life."

हास्य-रस का अन्य रसों से सम्बन्ध

हास्य-रस का अन्य रसों से सम्बन्ध

एक कवि अथवा लेखक के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि रस सम्बन्धी विषय पर लेखनी उठाने के पूर्व एक रस का दूसरे रस से सम्बन्ध—मैत्री, विषमता अथवा उदासीनता भली भाँति जान ले। साहित्य में रस का प्रयोग करना अत्यन्त दुष्कर बात है। लेशमात्र असावधानी और उपेक्षा लेखक अथवा कवि को अपने लक्ष्य की पूर्ति में असफल कर सकती है। परिवर्ती रसों का वैषम्य सृजित साहित्य को अरुचिकर और असफल बना देता है। अतः साहित्यकार के लिए यह आवश्यक है कि मित्र रसों का प्रयोग एक साथ करे और विषम रसों के प्रयोग में सावधानी के साथ कार्य किया जाय।

कविता तथा नाटक इत्यादि में प्रायः एक ही रस का प्राधान्य रहता है। परन्तु इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि रचना में आद्योपान्त एक और केवल एक रस का ही प्रयोग होता है। एक प्रधान रस के साथ अन्य सहायक रसों का प्रयोग भी होता ही रहता है। यदा कदा, यत्र तत्र अन्य रसों के द्वारा भी उस रस की पुष्टि होती रहती है। एक स्थान पर वीर तथा वीभत्स रसों का प्रयोग किया जा सकता है। शृंगार के साथ हास्य रस का प्रयोग रस निष्पत्ति में सहायक भले ही हो परन्तु बाधक नहीं हो सकता। परन्तु प्राचीन आचार्यों के मतानुकूल करुण और हास्य

रसों का प्रयोग असंगत होता है। मानव हृदय तथा मन स्वभावतः अनुकूल रसों का मित्र तथा प्रतिकूल रसों का शत्रु है।

वैष्णव आचार्यों की दृष्टि से रसों में शत्रुता तथा मैत्री इस प्रकार है :—

"अब शान्तादिक बारहो, के अरि मीत विभेद।
बरनहुँ सतगुर कृपा लहि, जानहिं विज्ञ विषेद॥
शान्त मीत वीभत्स रस, धर्म वीर अरु प्रीति।
प्रीतादिक चारों विषे, अद्‌भुत मीत पुनीत॥
रौद्र भयानक मधुर अरु, युद्ध वीर ए चारि।
शान्त सुरस के शत्रु हैं, बरने कविन विचारि॥
युद्ध वीर शुचि हास्यमय, ए प्रेयस के मीत।
वत्सल रौद्र बीभत्स भय, यहि के चारि अमीत॥
शान्तादिक पाँचहु सुहृद, अद्भुत के लखि लेहु।
अद्भुत के प्रतिपक्ष दुइ, रौद्र विभत्सक एहु॥
वीर सुहृद अद्भुत तथा, प्रेम हास अरु प्रीत।
शान्त भयानक दोय रस, हैं ये वीर अमीत॥
वत्सल रौद्र विलोकिए, सुहृद करुण रस केर।
बैरी है संभोग शुचि, अद्‌भुत हास करेर॥
वीर करुन द्वै मीतवर, है रस रौद्र मँझार।
भीषन उज्वल हास त्रय, या ते बैर अपार॥
लखो भयानक के सुहृद, करुन विभत्सक दोइ।
रौद्र हास अरु वीरशुचि, अरि बरनहिं यहि मोहि॥
तीन विभत्सक मीत ए, शान्त प्रीत अरु हास।
उज्ज्वल अरु प्रेयान रस, हैं या के अरि खास॥
काहू के बैरी नहीं, ना काहू के मीत।
तिनको नाम तटस्थ है, बरनहि रसिक विनीत॥"

सुविधा के हेतु वैष्णव आचार्यों का मत इस प्रकार चित्रित किया जा सकता है।

क्रम	रस	मित्र	शत्रु
१.	शान्त	हास्य, वीभत्स, धर्म-वीर, अद्भुत	मधुर, युद्धवीर, भयानक
२.	दास्य	वीभत्स, शान्त, धर्म-वीर, दानवीर	सुहृद, मधुर, युद्ध-वीर, रौद्र
३.	सख्य	मधुर, हास्य, युद्धवीर	वात्सल्य, रौद्र, भयानक
४.	वात्सल्य	हास्य, करुण, विरोध, हेतुक, भयानक	मधुर, युद्धवीर, दास्य, रौद्र, सख्य
५.	मधुर	हास्य, सख्य	वत्सल, वीभत्स, शान्त, रौद्र, भयानक
६.	हास्य	वीभत्स, मधुर, वत्सल	करुण, भयानक
७.	अद्भुत	शान्त आदि पाँच मुख्य रस	रौद्र, वीभत्स
८.	वीर	अद्भुत, हास्य, सख्य, दास्य	भयानक, प्रायः शान्त भी
९.	करुण	रौद्र, वत्सल	वीर, हास्य, संयोग, श्रृंगार, अद्भुत
१०.	रौद्र	वीर, करुण	हास्य, श्रृंगार, भयानक
११.	भयानक	वीभत्स, करुण	वीर, श्रृंगार, भयानक
१२.	वीभत्स	शान्त, हास्य, दास्य,	श्रृंगार, सख्य

उपर्युक्त वैष्णवों के मतानुसार हास्य रस के मित्र वीभत्स,

मधुर, वत्सल रस हैं और हास्य के विरोधी रसों के करुण और भयानक उल्लेखनीय हैं।

रसों की पारस्परिक मित्रता और विषमता के विषय में संस्कृत साहित्य के आचार्यों ने भी बहुत कुछ लिखा है। वास्तव में यह साहित्य का एक उल्लेखनीय और ध्यान देने योग्य विषय है। इसी कारण हमारे साहित्य के आचार्यों का ध्यान इसकी ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ है। 'साहित्य-दर्पण' कार ने रसों का विरोध इस प्रकार अंकित किया है :—

"आद्यः करुण वीभत्सरौद्रौ वीर भयानकै।
भयानकेन करुणेनापि हास्यो विरोध भाक्॥
करुणो हास्य शृंगार रसाभ्यामपि तादृशः।
रौद्रस्तु हास्य शृंगार भयानक रसैरपि॥
भयानकेन शान्तेन तथा वीरासः स्मृतः।
शृंगार वीर रौद्राख्य, हास्य शान्तैर्भयानकः॥
शान्तस्तु वीर शृंगार रौद्र हास्य भयानकैः।
शृंगारेण तु वीभत्स इत्याख्याता विरोधना॥

'साहित्य दर्पण' कार के मतानुसार हास्य रस का विरोध करुण, भयानक, रौद्र, शान्त आदि रसों के साथ होता है। इन चारों रसों के साथ प्रयुक्त हास्य रस निर्जीव होगा और उसमें हास्य उद्रेक करने की शक्ति नहीं होगी। इस प्रकार के प्रयोग को आचार्यों ने 'अधम प्रयोग' कहा है। अन्य मित्र अथवा उदासीन रसों के साथ प्रयुक्त हास्य रस में कोई असफलता अथवा बाधा का प्रश्न नहीं उपस्थित होता है।

रीति-कालीन विद्वानों में 'देव' जी का महत्व-पूर्ण स्थान है। देव जी ने भी अपने रीति ग्रन्थों में रस शत्रु अंकित किए हैं :—

"रिपु वीभत्स सिंगार को, अरु भय रसु रिपुवीर ।
अद्‍भुत रिपु रौद्रहि कहत, करुन हास्य रिपु धीर ॥"

और रस मित्रों के विषय में देवजी ने इस प्रकार लिखा है :—

"होत हास्य शृंगार ते करुना रौद्र ते जानु ।
वीरजनित अद्‍भुत कहौं, वीभत्स ते भयानु ॥"

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत आचार्यों, वैष्णव आचार्यों तथा हिन्दी के आचार्यों के दृष्टि-कोण में कोई विशेष भेद नहीं है । सभी विद्वानों का एक मत है कि हास्य रस के शत्रु करुण और भयानक रस हैं और मित्र वीभत्स, मधुर तथा वात्सल्य रस हैं ।

वैष्णाव मतानुकूल हास्य-रस का वर्णान-चक्र

वैष्णव मतानुकूल हास्य-रस का वर्णन-चक्र

रस	तदानुकूल मानसिक प्रवृत्ति	देवता	वर्ण	स्थायी भाव	विभाव: आलम्बन	विभाव: उद्दीपन	संचारी भाव	अनुभाव	सात्विक भाव
हास्य स्मित हसित	विकास	बलराम (प्रमथ)	पाण्डु (श्वेत)	हास्य रति	श्रीकृष्ण तथा उनके अनुगत, विकृत चेष्टाशाली व्यक्ति.	वाद्य, वेश. आचरणादि	अवहित्था, आलस्य, औत्सुक्य, हर्ष	नेत्र मूँदना, मुसकराना, ओष्ठ, गण्डस्थली आदि का स्पन्दन	स्तम्भादि भाव
अपहसित									
अवहसित									
अतिहसित									

आधुनिक हिन्दी-साहित्य में हास्य-रस

आधुनिक हिन्दी-साहित्य में हास्य रस

हास्य और नाटक का सम्बन्ध:—हँसी के भेदोंका उल्लेख अन्यत्र हो चुका है। उन भेदों का पारस्परिक अन्तर भी बताया जा चुका है। प्रधानत: हास्य के तीन भेद हैं। हास्य (Humour), वैदग्ध (wit) तथा भ्रान्त (Nonsense)। इन तीनों का अन्तर संक्षेप में है कि हास्य का क्षेत्र कार्य, अवस्था और चरित्र है। इन्हीं कार्य, अवस्था और चरित्र से हँसी की वस्तु प्रकाश में लाना हास्य (Humour) का मुख्य कार्य है। वाग्वैदग्ध का मुख्य क्षेत्र शब्दावली तथा वाणी है। यह सदैव मनुष्य के शब्दों तथा अभिप्राय से हँसाने वाली सामग्री ढूँढ़ निकालता है। भ्रान्त या निरर्थक (Phantasy) (अतिशयोक्ति तथा उन्मत्त कल्पना) के द्वारा मनुष्य को हँसाने की आयोजना करता है। शैशवावस्था में बालक भ्रान्त की अयुक्तता (aburdity) पर हँसते हैं अत: भ्रान्त मूल हास, हास वास्तविक हास तथा वाग्वैदग्ध आदर्श हास कहा जा सकता है। पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार वाग्वैदग्ध उत्कृष्ट तथा अन्यतम हास है तथा सबसे कलापूर्ण हास (Comic) है।

श्री जी० पी० श्रीवास्तव के प्रहसन नाटकों में अवस्था द्वारा

उत्पादित हास्य की बड़ी भरमार है। इनके "अच्छा उर्फ अक्ल की मरम्मत" में बदहवास राय अपनी स्त्री को प्रसन्न रखने की युक्ति अपने मित्र रसिकलाल से पूछता है। रसिकलाल अपनी सम्मति देता है कि स्त्री के कुछ भी कहने पर वह केवल 'अच्छा' ही उत्तर में कहे। बदहवास राय यही निश्चय कर घर आते हैं। उसकी स्त्री कुपित होकर आती है और ऐसी अवस्था उत्पन्न कर देती है कि हँसी आना स्वाभाविक ही है।

सुशीला—मैं अपने पिता के यहाँ जाती हूँ।

बदहवास राय—अच्छा।

सुशीला—इससे तो अच्छा हो कि मौत आ जाय।

बदहवास राय—अच्छा।

सुशीला—मैं खुद ही न प्राण त्यागे देती हूँ।

बद०—अच्छा।

सुशीला—अभी जाकर मैं विष खाती हूँ।

बद०—अच्छा। *

दर्शक यह जानते हैं कि सुशीला न आत्महत्या करेगी और न पिता के घर ही जायगी तथा बदहवास यों ही अच्छा अच्छा करता रहेगा। ऐसी परिस्थिति में अवस्था हास्योत्पादिका है। इस स्थान पर न तो हमें कोई पात्र और न चरित्र ही हँसाते हैं वरन् हास्य अवस्था के कारण उत्पन्न हुआ है।

प्राय: अवस्था से अधिक हमको पात्र का कार्य हँसाता है। 'विशाख' में इसका उत्तम उदाहरण है। वह कार्य डरे हुए बौद्ध भिक्षु का है:—

"भिक्षु—अच्छा बैठ जाऊँ (बैठता है। प्रेमानन्द नाक बजाता है जिसे सुनकर भिक्षु चौंककर खड़ा हो जाता है।)

* नोक-झोंक पृष्ठ ५२।

भिक्षु—...नमो तस्स......नमो......न न मैं नहीं भगवतो ......भग जाता हूँ। (काँपता है; शब्द बन्द होता है, भिक्षु फिर डरता हुआ बैठता है और काँपता हुआ सूत्रपाठ करने लगता है। लोमड़ी दौड़ कर निकल जाती है। भिक्षु घबड़ा कर जयचक्र फेंक मारता है।)

प्रेमानन्द—(स्वगत) वाह, जयचक्र तो सुदर्शन चक्र का काम दे रहा है। देखूँ इसकी क्या अभिलाषा है।

भिक्षु—(टूटा हुआ जय चक्र लेकर बैठकर)......यहाँ तो भगवान लोमड़ी के रूप में आकर भाग जाते हैं और मुझे भी भगाना चाहते हैं क्या करूँ।" *

उपर्युक्त उदाहरण में भिक्षु का कार्य ही हमें हँसाता है। इसी प्रकार चरित्र का हास यद्यपि शब्दों द्वारा प्रकट किया जाता है फिर भी उसका हास (comic) शब्दों के आश्रित न होकर उनसे व्यक्त अपनी असम्बद्धता आदि पर हँसता है। इसका अच्छा उदाहरण हमें श्री जी० पी० श्रीवास्तव के प्रहसन 'उलट फेर' में मिलता है। अललटप्पू में आत्मनिर्भरता बिलकुल नहीं है और न कार्य करने की दृढ़ता ही। इसके साथ साथ वह कमअक्ल भी है।

"गुलनार—मगर मियाँ मुझ पर रोब क्यों जमाते हो ?

अललटप्पू—ताकि और पर रोब जमाने की आदत पड़ जाय।

गुल०—वाह वाह तुम्हारी बातों पर तो मुझे हँसी आती है।

अल०—हँसी तो मुझे भी आती है।

गुल०—तो फिर हँसते क्यों नहीं हो ?

अल०—इसलिए कि कहीं रोब न बिगड़ जाय।

---

* विशाल पृष्ठ ६४।

गुल०—अहा ! हा !! हा !!! मियाँ तुम तो पिंजड़े में बन्द करने लायक हो।

अल०—बस, बस, खबरदार। अब जो 'ही ही' किया तो तुम जानो।

गुल०—अय है जरा ही में तिनक उठे। वाह रे मिज़ाज !

अल०—बेशक मैं नहीं हँसने दूँगा।

गुल०—जो हँसूँ तो क्या कर लोगे ?

अल०—क्या कर लूँगा ? बताऊँ ? मैं मैं मैं खफा हो जाऊँगा खफा हो जाऊँगा। एकदम।

गुल०—शुभान अल्लाह ! खफा होकर क्या कर लोगे ? एक बार नहीं लाख बार खफा हो।

अल०—फिर नहीं मानती मैं एकदम खफा हो जाऊँगा।"

यहाँ पर न तो वाग्वैदग्ध है और न परिस्थिति ही हास्योत्पादक है। केवल अललटप्पू का चरित्र यहाँ पर हमें हँसाता है।

वाक्केलि तथा वाग्वैदग्ध के भी असंख्य उदाहरण भरे पड़े हैं। वाग्वैदग्ध के उदाहरण 'वैदग्ध' परिच्छेद में दिये जा चुके हैं अतः यहाँ पर वे आवश्यक नहीं हैं।

नाटकों में सबसे अधिक प्रयुक्त हास होता है भ्रान्त। इसमें प्रहसनीय विषय अपनी अतिशयता, असंभाव्य या अयुक्तियुक्तता के कारण लोगों को हँसाता है। भ्रान्त का एक उत्कृष्ट उदाहरण श्री जी० पी० श्रीवास्तव के 'उलट फेर' में घोंघा बसन्त और उदित के सम्वाद में है। इस वार्तालाप में केवल अयुक्तयुक्तता ही हमें हँसाती है। उदित जब घोंघा बसन्त को सवा रुपये की जगह बीस आने देता है तो घोंघा बसन्त बिगड़ता है:—

"घोंघा बसन्त—लाला देखो तो कतिक बाकी तोरे कागदवा माँ हैं ?

पटवारी—सवा रुपइया।

घों० ब०—तब काव कहत है रे। मार सारे के। मोंछ उखाड़ ले। काहे नाहीं दिहिस रे।

उदित—हाय दादा मर गयन। बीस आना आपन लेयो अउर हमार जीव छाँड़ौ।

घों० ब०—बिन मार खाये कउनो पोत नहीं देत है, कतिक है?

उदित—बीस आना।

घों० ब०—क सारे बीस आना काहे देत है? सवा रुपइया चाही तउने में बीस आना?" *

उपर्युक्त कथन में भ्रान्त ही हमारे हास्य का कारण है। बीस आना और सवा रुपया में अन्तर ही क्या है? उन दोनों का इस बात पर झगड़ना हमें हँसाता है। प्रहसनों में भ्रान्त का ही अधिक प्रयोग किया जाता है।

प्रहसनों की कथावस्तु अत्यधिक बढ़ा चढ़ा कर कही जाती है। पात्रों के चरित्र असम्भाव्य रूप में प्रदर्शित किये जाते हैं। भ्रान्त निम्न कोटि का हास माना गया है और इसी का उपयोग होने से प्रहसन भी निम्न कोटि का माना जाता है। प्रहसन में न तो चरित्रचित्रण की कुशलता और न उत्कृष्ट हास्य का विधान होता है। इसीलिए इसका मूल्य साहित्य की दृष्टि से अधिक नहीं है।

इस विवेचन से अब प्रकट हो गया होगा कि हास्य के क्षेत्र में घटना, चरित्र, परिस्थिति और शब्दावली—सभी कुछ—आ जाती हैं। मानव जीवन और उसके बाहर की सभी वस्तुओं से हास्य को अपने उपयोग की सामग्री मिल सकती है। मानव जीवन के समान ही इसका क्षेत्र व्यापक है।

---

* उलट फेर—'घोंघाबसन्त'

हास्य के इन उपकरणों का नाटक के उपकरणों से बड़ा साम्य है। नाटक के प्रधान उपकरण पात्र, कथावस्तु, कथोपकथन और उद्देश्य हैं। कथावस्तु और पात्र ही हास्य की परिस्थिति और चरित्र हैं। कथोपकथन को प्रभावोत्पादक बनाने के हेतु वाग्वैदग्ध का उपयोग होता है। उद्देश्य से प्रेरित होकर हास्य भी नाटकों के समान सामाजिक, धार्मिक तथा अन्य उद्देश्यों की पूर्ति करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हास्य और नाटक के उपकरण एक ही हैं। उनमें कोई विरोध नहीं है और एक का उपयोग दूसरे में होता है।

जिस प्रकार हँसी का प्रधान क्षेत्र कोई अवस्था, कार्य और चरित्र है उसी प्रकार नाटकों में भी प्रधानतया घटनाओं का उद्घाटन या चरित्रोद्घाटन होता है। इन घटनाओं तथा चरित्र के अन्तर्गत उसके सभी कार्य और सभी अवस्थाएँ आ जाती हैं। नाटक या तो घटना प्रधान होते हैं या चरित्र प्रधान। घटना प्रधान नाटक किसी घटना के आश्रित होते हैं। उसके पात्र स्वतन्त्र न होकर घटनाचक्र में पड़ कर आप से आप एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति में पड़ते हुए अपने उद्देश्य में सफल या असफल होते हैं। चरित्र प्रधान नाटककार की दृष्टि उतनी घटना और कौतूहल की ओर नहीं रहती जितनी कि मानव-प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण में। मानव-प्रकृति का जितना ही सूक्ष्म निरीक्षण होगा और उसके व्यक्त करने की जितनी अधिक शक्ति नाटककार में होगी उतना ही अधिक सच्चा और प्रभावशाली चित्रण होगा। नाट्यशास्त्र के अनुसार चरित्र प्रधान नाटक का मूल्य साहित्य में ही होता है, नाटक कला में नहीं। हास्य-रस में, जिनमें घटना के साथ चरित्र-चित्रण होता है, वे अच्छे समझे जाते हैं। दर्शक कौतूहलवर्धक घटना का विधान

न देख कर ऊब उठते हैं और कलापूर्ण चरित्र-चित्रण की अभिव्यक्ति के प्रति उदासीन हो जाते हैं। हास्य का अभिनय के आश्रित होने के कारण हास्य रस के नाटकों में भी घटना-विधान की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है और चरित्र-चित्रण की ओर कम।

भारतीय दृष्टि से नाटक के तीन अंग हैं:—

१—नायक, २—वस्तु, ३—रस।

नायक के विस्तृत सम्बन्ध की यदि कल्पना करें तो नायक से नाटक के अन्य पात्रों का भी बोध होता है। नायक शब्द नाटक के चरित्र-चित्रण की ओर ध्यान दिला देता है। नायक के अन्तर्गत इस प्रकार से पात्र और चरित्र-चित्रण भी आता है। कथा वस्तु से नाटकीय घटना-विधान की ओर संकेत है। कथोपकथन भी इसमें आ जाता है। अतः नायक तथा कथावस्तु में पाश्चात्य शास्त्रियों के चार नाटकीय अंग—पात्र, कथोपकथन, चरित्र-चित्रण और कथानक—आ जाते हैं।

हास्य के बताये हुए प्रहसनीय विषयों में घटना द्वारा हास्योद्रेक, चरित्र द्वारा हास्योद्रेक और शब्द द्वारा हास्योद्रेक नाटक के चारों अङ्गों को अपना विषय बनाते हैं। जिन उपकरणों का उपयोग नाटककार करता है उन्हीं का उपयोग हास्य में भी होता है। दोनों के क्षेत्र के विषय एक ही हैं। यही नहीं, हास्य का उपयोग नाटककार अपने नाटकों को रोचक बनाने के हेतु करते हैं। और इसका उपयोग आवश्यक भी है। नाटक में यदि हास्य का समावेश न हुआ तो परिस्थिति चाहे करुण हो अथवा सुखान्त हो, वह बराबर रोचक नहीं रह सकती। दर्शक उद्विग्न होकर उस नाटक की समाप्ति के समय की प्रतीक्षा और इच्छा करेंगे। बात यह है कि सामाजिक बीच बीच में विश्राम चाहते

हैं। एक ही प्रकार की मनोवृत्ति में बराबर लगे रहने से उन्हें उचाट सा लगने लगता है अतः उनका ध्यान नाटक की ओर आकृष्ट करने के हेतु यह आवश्यक है कि हास्य का विधान किया जाय।

नाटकों में हास्यरसः—भारतेन्दु युग के पूर्व हिन्दी साहित्य में नाटकों का प्रायः अभाव था। उस समय तक सब मिला कर हिन्दी में प्रायः एक दर्जन नाटक भी नहीं लिखे गये थे और वे भी नाममात्र के लिए नाटक कहे जा सकते हैं कारण कि उनमें नाटकत्व के प्रधान लक्षणों का अभाव था।

वास्तव में भारतेन्दु ही हिन्दी नाटकों के जन्मदाता कहे जा सकते हैं। उन्होंने हिन्दी प्रचार का यह एक उत्तम उपाय सोचा और कुछ अंशों तक उनकी आशा पूर्ण भी हुई। उस समय के नाटक भद्दे, अश्लील और अरुचिकर थे जो जनता की तत्कालीन रुचि के अनुसार लिखे गये थे। भारतेन्दु बाबू ने उनके स्थान पर अच्छी हिन्दी में कुछ नाटकों की रचना की। जनता की रुचि बनाये रखने के हेतु उन्होंने उसमें हास्यपूर्ण दृश्यों की अवतारणा की।

हिन्दी नाटकों में हास्य-रस का समुचित समावेश करने वाले सर्वप्रथम लेखक भारतेन्दु बाबू ही थे। हमारे साहित्य में भारतेन्दु बाबू का वही स्थान है जो बँगला साहित्य में श्री बङ्किम चन्द्र का है। भारतेन्दु बाबू और बङ्किम चन्द्र दोनों का दृष्टिकोण एक ही है—भारतीयता का उत्थान। इस जागृति और उत्थान को लाने का साधन उन्होंने हास्य और व्यङ्ग भी रक्खा।

भारतेन्दु जी के मौलिक नाटकों में हास्य का विधान बहुत सुन्दर नहीं हो पाया। उसमें कहीं-कहीं अपरिष्कृत ग्रामीणता की स्पष्ट छाप है और यत्र तत्र अश्लीलता भी आ गई है। परन्तु यह

दोष उतना भारतेन्दु बाबू का नहीं है जितना उस समय की जनता का। जनता की रुचि को उन्हें हिन्दी की ओर लगाना था अतः उसकी रुचि और इच्छा का ध्यान उन्होंने आद्योपान्त रक्खा। उपर्युक्त दोषों के प्रदर्शन से यह तात्पर्य नहीं है कि भारतेन्दु बाबू कुशल कलाकार नहीं थे। स्थान स्थान पर उनका हास्य सभ्य तथा सुसंयत भी है। भारतेन्दु जी आधुनिक गद्य साहित्य के स्थापक थे। साहित्य के आरम्भिक काल में यदि कोई त्रुटि रह भी गयी हो तो उसमें कोई आश्चर्य और दुःख की बात नहीं है। 'काव्येषु नाटकं रम्यं' के अनुसार काव्य में नाटक सबसे अधिक रमणीक है फिर भी नाटक-रचना कठिनतर है। घटना-प्रवाह की योजना, उसके पात्रों का नाटकत्व और चरित्र-चित्रण आदि का समुचित प्रयोग एक दुष्कर कार्य है उस पर भी हास्य जैसी मनोवृत्ति का प्रयोग और भी दुष्कर है।

भारतेन्दु के नाटकों में हास्य (Humour) बहुत ही कम है। वाग्वैदग्ध यत्र तत्र है पर वह भी कम मात्रा में। उनके नाटकों में उपहास हमें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। यह उपहास कहीं कहीं हास्य मिश्रित है। आक्षेप और व्यङ्ग का भी प्रयोग उनके नाटकों में मिलता है। उनके व्यङ्ग धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक कुरीतियों पर अवलम्बित हैं। मांस भक्षण तथा सुरा पान पर अनेक स्थलों पर व्यङ्ग किये गये हैं। वेदान्ती तथा विदूषक के कथनोपकथन में वेदान्ती पर व्यङ्ग किया गया है:—

"विदूषक—क्यों वेदान्तीजी! आप मांस खाते हैं या नहीं?

वेदान्ती—तुमको इससे कुछ प्रयोजन है?

विदूषक—नहीं कुछ प्रयोजन तो नहीं है, हमने इस वास्ते पूछा कि आप तो वेदान्ती अर्थात बिना दाँत के हैं सो भक्षण कैसे करते होंगे?"

निम्नलिखित अवतरण में मांसभक्षक तथा सुरापान करने वाले पुरोहित को उपहासास्पद बनाया गया है—

"महाराज वैष्णवों का मत तो जैन मत की एक शाखा है और महाराज दयानन्द स्वामी ने इन सबका खूब खण्डन किया है। पर वह तो देवी की मूर्ति को तोड़ने को कहते हैं। यह नहीं हो सकता क्योंकि फिर बलिदान किसके सामने होगा?"

'हरिश्चन्द्र' तथा 'चन्द्रावली' में हास का कोई विशेष अङ्ग नहीं है। 'नील देवराम' स्वयं एक गम्भीर गीतिरूपक है। 'भारत-दुर्दशा' में भारत की आधुनिक दुर्दशा का चित्रण है। अतः इसमें भी हास्य का सृजन नहीं हुआ क्योंकि करुण रस प्रधान होने से हास्य दब जाता है। 'विषस्य विषमौषधम्' में एक शराबी का अन्य गिरे हुए शराबी पर किये गये उपहास का चित्रण किया गया है। इसमें उपहास कुछ कुछ अशिष्ट है।

'अन्धेर नगरी' के हास्य से केवल बालकों का मनोरञ्जन हो सकता है। उसमें न तो कथावस्तु ही हास्योत्पादक है और न चरित्रचित्रण ही।

'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में भारतेन्दु जी ने 'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन' शीर्षक का एक प्रहसन लिखा था। वे जितने पाश्चात्य अन्धानुकरण के विरोधी थे उतने ही व्यवसायी पण्डितों तथा मुल्लाओं के भी। 'पाँचवें पैग़म्बर' और 'सबै जात गोपाल की' इन दोनों प्रहसनों में धूर्त धर्माचार्यों पर तीव्र व्यङ्ग किये गये हैं। 'पाँचवें पैग़म्बर' में लिखते हैं :—

"लोगो, दौड़ो, दौड़ो, मैं पाँचवाँ पैग़म्बर हूँ; दाऊद, ईसा, मूसा, मुहम्मद ये चार हो चुके हैं। मेरा नाम चूसा पैग़म्बर है।·········क्योंकि मैं सबका पाप रूपी पैसा चूस लेता हूँ।"

'पाँचवें पैग़म्बर' में हास्य अच्छा है। *

भारतेन्दु के प्रदर्शित मार्ग पर अन्य साहित्यिक अग्रसर हुए। नाटक के इसी प्रथम उत्थान में श्रीनिवासदास, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, तोताराम, अम्बिकादत्त व्यास, राधाकृष्ण दास, 'प्रेमघन' तथा 'पूर्ण' सुन्दर नाटककार हुए। इनमें हास्य की दृष्टि से विशेषतया उल्लेखनीय श्रीनिवासदास, प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्ण दास, 'प्रेमघन' तथा 'पूर्ण' हैं। इनका हास्य व्यङ्ग मिश्रित है परन्तु अधिक परिष्कृत नहीं है।

भारतेन्दु युग के पश्चात् भी पारसी नाटकोंका प्रभाव कुछ न कुछ बना ही रहा यद्यपि इस समय तक वह शिथिल पड़ चुका था। इसी समय नारायणप्रसाद 'बेताब', आग़ा हश्र काश्मीरी, हरी कृष्ण 'जौहर', तुलसीदत्त 'शैदा', इत्यादि अनेक नाटककार नाटक लिखने लगे। इनके नाटकों पर भी कुछ न कुछ पारसी नाटकों का प्रभाव पड़ा। हास्य रस की भी धारा पहले से अब कुछ अधिक निर्मल हो गयी। १९ वीं शताब्दी के पारसी नाटकों में स्थान स्थान पर कुछ भद्दे और अश्लील हास्य का विधान होता था परन्तु हास्यात्मक दृश्यों की समुचित आयोजना सर्व प्रथम आग़ा हश्र काश्मीरी ने की। उन्होंने स्वलिखित नाटकों में दो स्वतन्त्र कथानकों की आयोजना की—एक गम्भीर तथा दूसरा हास्यमय। इसी के आधार पर धीरे धीरे हास्यपूर्ण कथानक रखने का नियम ही प्रचलित हो गया। कारण कि जनता गम्भीर दृश्यों के स्थान पर हास्यात्मक दृश्य अधिक पसन्द करती थी। समय के साथ ही साथ नाटकों में हास्यात्मक दृश्यों का विधान

* साहित्यिकी पृ० १०२।

नाटक का आवश्यक अङ्ग समझा जाने लगा। यहाँ तक कि कुछ नाटककार अन्य लेखकों से हास्यपूर्ण कथानक लिखाकर अपने नाटक के साथ लगा दिया करते थे। उदाहरणार्थ 'महात्मा विदुर' नाटक में नन्दकिशोर लाल वर्मा ने शिवनारायणसिंह लिखित 'कलयुगी साधु' प्रहसन लगा दिया।

इस समय तक हास्य के विधान का महत्त्व तथा आवश्यकता नाटककारों को प्रतीत हो चुकी थी। वे इस ओर विशेष रूप से ध्यान रखते थे। जमुनादास मेहरा अपने नाटक 'पाप परिणाम' के वक्तव्य में इस प्रकार लिखते हैं:—

"प्रस्तुत पुस्तक में हमने उद्योग किया है कि दोनों ही कार्य रहें अर्थात् विषय सामाजिक, वर्तमान समय के उपयुक्त और उपदेशप्रद तथा चित्ताकर्षक हो। जो सदा से पारसी कम्पनियों के भक्त रहते आये हैं वे भी यदि खेलें, तो उनका भी मनोरञ्जन हो। इसलिए इसमें स्थान स्थान पर पारसी कम्पनियों के ढङ्ग की शायरी तथा हास्य कौतुक आदि भी दे दिया गया है।"

गम्भीर अङ्कों के पश्चात् हास्यमय दृश्य केवल भाव विश्राम तथा मनोरञ्जन के हेतु जोड़ दिये जाते थे। इन हास्य-मय कथानकों में व्यंग प्रधान रूप से होता था। और इन व्यंगों के लक्ष्य होते थे—ब्राह्मण, साधु, वकील और फ़ैशन के पुजारी नवयुवक तथा नवयुवतियाँ। वैद्य और डाक्टर भी प्रायः व्यङ्ग-बाण के लक्ष्य बन जाते थे। ये प्रहसन बहुत ही छोटे होते थे जिनमें अति नाटकीय प्रसङ्गों और दृश्यों तथा हास्य व्यङ्ग-पूर्ण संलापों का आधिक्य रहता था। उनका भी हास्य तथा व्यङ्ग इतना अति नाटकीय होता था कि वह न तो सुरुचिपूर्ण ही रह जाता था और न परिष्कृत ही।

द्विवेदी युग में साहित्य के सभी अङ्गों की यथेष्ट उन्नति हुई।

इस समय अनेक सफल नाटककार हुए जिनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय मिश्रबन्धु, 'प्रसाद' जी, बदरीनाथजी भट्ट, 'उग्र' जी तथा श्री जी० पी० श्रीवास्तव हैं। उस समय तक हास्य का क्षेत्र परिष्कृत हो चुका था और नाटककार शिष्ट तथा सुसंयत हास्य की रचना करने लगे थे। जनता की रुचि में भी अभीप्सित परिवर्तन हो गया। अंग्रेजी नाटकों और चलचित्रों का प्रभाव हिन्दी नाटकों के हास्य पर पड़े बिना न रहा। यद्यपि व्यङ्गात्मक हास्य का प्राधान्य रहा फिर भी व्यङ्ग के लक्ष्यों में परिवर्तन हो गया। इस समय व्यङ्गात्मक हास्य के लक्ष्य थे शिक्षित युवकों की बेकारी, रायबहादुरों तथा आनरेरी मजिस्ट्रेटों की राजभक्ति, फैशन के उपासक नवयुवक, नवयुवती तथा वैद्यों और डाक्टरों के धनोपार्जन के घृणित उपाय। इस समय नाटककारों का ध्यान शुद्ध हास्य तथा वाग्वैदग्ध की ओर भी आकृष्ट हुआ। द्विवेदी युग के हास्य की सर्वश्रेष्ठ विशेषता है उसकी मौलिकता तथा शिष्टता। इतने मौलिक तथा शिष्ट हास्य की रचना न तो भारतेन्दु युग में हुई और न उनके बाद 'बेताब', 'शैदा' इत्यादि के समय में।

मौलिक तथा शिष्ट हास्य की दृष्टि से मिश्रबन्धु भी महत्त्वपूर्ण हैं। आपके नाटकों में हास्य का समावेश जिस कलापूर्ण रीति से हुआ है वह सदैव सराहनीय रहेगा। आपके नाटकों—'पूर्वभारत','उत्तरभारत', 'शिवाजी', 'रामचरित्र','ईशान वर्मन'—में उत्कृष्ट हास्य-पूर्ण स्थलों की अपूर्व अवतारणा हुई है। आपके नाटकों में हास्य इतना सफल है कि पाठक अथवा जनता पढ़कर अथवा देख कर अवश्य हँस देंगे। यही है नाटककार की कुशलता। आपके नाटकों में हास्य का उद्रेक विदूषक द्वारा न होकर अनेक पात्रों के द्वारा हुआ है। ये पात्र अत्यन्त ही शिष्ट तथा

सुरुचिपूर्ण हास्य का विधान करके सामाजिकों का मनोरञ्जन करते हैं। इस युग के दो नाटककारों—मिश्रबन्धु तथा 'प्रसाद' जी—में यह विशेषता उल्लेखनीय है कि उनका हास्य अत्यन्त ही मर्यादित तथा सुसंयत है।

भ्रांत हास्य का विधान मिश्रबन्धु के नाटकों में बड़ा ही सुन्दर तथा सराहनीय हुआ है।

उदाहरणार्थ:—

"हस्तिनापुर की एक फुलवारी। लाला, पुरबी, रामसहाय व रोशन का प्रवेश।

लाला—कै हो पुरबी महराज कुछ सुन्यो ? अब की सालौ भरे के सबै यतवार सुना सब बुद्धैक परिगे।

पुरबी—तुमहूँ निरे अहमकै रह्यो लाला, अरे ! कहूँ दुइ, एकु परिगे ह्वइहइं। भला सब कइसे परि सकत्थैं ?

लाला—यहै तो पूछा।

रामसहाय—भला पाँड़े, जो तालाब में आग लगे तो मछलियाँ कहाँ जावें ? बेचारी उसी में जलें भुनें।

पुरबी—जरैं काहे ? बिरवन पर न चढ़ि जाँय।

लाला—तौ का उइ गाई-भैंसी आँय ?" (पूर्वभारत पृ० ८०)

यहाँ पर भाषा भी पात्रों के अनुकूल ही रखकर नाटककारों ने शुद्ध हास्य को और भी प्रभावशाली बना दिया है। विद्वद्वर मिश्रबन्धु के नाटकों में व्यङ्गात्मक के भी उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं यथा :—

चण्डूबाज—क्या कहूँ भाई, अगले जमाने में लोग अपना ईमान सँभालते थे। अब तो राज की बात ही क्या है ? लोग एक एक पैसे के लिए जान दिये देते हैं। *

* पूर्वभारत, चतुर्थ संस्करण पृ० ६३ ।

आजकल के वैद्यों तथा डाक्टरों को अपनी फीस से प्रयोजन है। उन्हें क्या ? कोई स्वस्थ हो अथवा अस्वस्थ। नये वैद्यों पर एक नागरिक का व्यङ्ग पढ़िए :—

तीसरा नागरिक—इन नए बैदों की कुछ बात न कहिए धर्मराज
क्या जमराज के अवतार हैं।*

श्री मिश्रबन्धु के व्यङ्ग प्रकट तथा अप्रकट दोनों प्रकार के हैं। उनके व्यङ्ग का दृष्टिकोण ही कुछ नवीन है। साथ ही वह मार्मिक भी हैं। नाटकों में हास्य क्रिया तथा वाणी से किया गया है। यत्र-तत्र चरित्र-चित्रण द्वारा भी हास्य का उद्रेक किया गया है। द्विवेदी-काल में 'प्रसाद' जी का उल्लेख अनिवार्य है। 'प्रसाद' जी बड़े ही भावुक, सूक्ष्मदर्शी कवि तथा कलाकार थे। भावुकता के परिचायक तो स्वयं उनके नाटक भी हैं। 'प्रसाद' जी यद्यपि गम्भीर और भावुक कवि थे पर उनमें हास्य की भावना भी वर्तमान थी। उनका हास्य शिष्ट तथा सभ्य है। वह अश्लीलता का स्पर्श तक नहीं कर सका।

हास्य, वैदग्ध तथा व्यङ्ग का प्रयोग 'प्रसाद' जी ने अपने नाटकों में बड़ी सफलता से किया है। इनके उदाहरण हास्य के अन्तर्गत दिये जा चुके हैं।

'प्रसाद' जी के हास्य का वास्तविक स्वरूप वसन्तक के निम्नलिखित उद्गार में ही मिलता है :—

"फटी हुई बाँसुरी भी बजती है......यह सब ग्रहों की गड़बड़ी है। ये एक बार ही इतना बड़ा काण्ड उपस्थित कर देते हैं। कहाँ साधारण बाला हो गयी थी राजरानी। मैं देख आया वही मागन्धी ही तो है अब आम लेकर बेचा करती है और

---

* पूर्वभारत चतुर्थ संस्करण पृ० १२६।

लड़कों के ढेले खाया करती है। ब्रह्मा भी कभी भोजन करने के पहले मेरी ही तरह भाँग पी लेते होंगे तभी तो ऐसा उलट फेर......।" *

उत्कृष्ट हास्य में हँसी ओठों तक ही सीमित रहती है अतः 'प्रसाद' जी के हास्य में यदि ठठा मारकर हँसने का अवसर न मिले तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

यद्यपि 'प्रसाद' जी की आत्मा का झुकाव हास्य की ओर विशेष रूप से है तथापि व्यंग, आक्षेप तथा कटाक्ष करने में भी कुशल प्रतीत होते हैं। इनकी सहज गम्भीरता के कारण इनके व्यंग कोरी गालियाँ होने से बच जाते हैं। उपहास प्रतिहिंसा का साहित्यिक रूप है। इस विशिष्ट, सभ्य तथा सङ्कोचपूर्ण जग में उपहास ही प्रतिकार का एक मात्र उपाय है। स्वाभाविक गंभीरता के कारण इनका व्यंग मार्मिक बनकर लक्ष्य पर प्रहार करता है। इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण वसन्तक के अन्तिम वाक्य में है :—

"वसन्तक—महाराज ने एक दरिद्र कन्या से विवाह कर लिया...।
जीवक—तुम्हारे ऐसे चाटुकार और चाट लगा देंगे, दो चार और जुटा देंगे।
वसन्तक—श्वसुर ने दो व्याह किये तो दामाद ने तीन। कुछ उन्नति ही हो रही है।" (अजातशत्रु पृ० ६२)

प्रसाद जी के नाटकों में हास्य का विधान बहुत कम स्थलों पर हुआ है। उपहास भी उसी प्रकार कम स्थलों में मिलेगा। हास्य की भाँति आपका व्यंग भी शिष्ट तथा मार्मिक होता है। इसी प्रकार का उपहास 'विशाख' नाटक में महा पिंगलक का

* अजात-शत्रु पृ० १६६।

है। तीसरे अङ्क के प्रथम दृश्य में नरदेव के कहने पर कि "क्या तू मेरे प्रेम की अवहेला किया चाहता है, अभी उसकी आज्ञा से यह कटार अपने वक्षस्थल पर उतार सकता हूँ।" महापिंगलक कहता है :—"और क्या प्रेम इसे कहते हैं। हाँ जी, प्रेम भी तो राजाओं का है।" (विशाख अंक ३, दृश्य १)

'प्रसाद' जी के नाटकों में हास तथा उपहास की तुलना में वाग्वैदग्ध अत्यन्त अल्प है और जितना भी वाग्वैदग्ध प्रयुक्त हुआ है वह भी उच्च या रुचिकर नहीं है। वास्तविक वैदग्ध वही है जिसमें असमान असंगत की शीघ्र योजना के तल में समानता और युक्तियुक्तता रहती है। संक्षेप में प्रसाद जी के नाटकों में वैदग्ध के विकसित रूप के दर्शन नहीं मिलते हैं।

गम्भीर प्रकृति वाले मनुष्यों के हेतु शुद्ध हास्य का सृजन दुष्कर कार्य है। प्रसाद जी के नाटकों में केवल (चन्दुला की बातचीत में) एक स्थल पर शुद्ध हास्य का विधान हुआ है। जो कुछ भी हास्य का सृजन हुआ है वह केवल विदूषक के द्वारा ही है। विदूषकों से स्वतन्त्र हास बहुत कम स्थलों पर हुआ है। उनका चित्रण संस्कृत की प्राचीन परिपाटी पर कुछ कुछ अवलम्बित है। उसी परिपाटी के अनुसार मुद्गल सदैव पाकशाला पर चढ़ाई करने को प्रस्तुत रहता है, वसन्तक लड्डुओं के लिए लार टपकाता है और महापिङ्गलक नरदेव को उसी ओर ले जाना चाहता है जिधर उसको कुछ पेट पूजा की सामग्री मिले।

इसी काल में हास्य-रस के सबसे अधिक नाटक लिखने वाले श्री जी० पी० श्रीवास्तव हुए। इसी कारण श्रीवास्तव जी हमारे साहित्य में 'हास्य रस के सम्राट' कहे जाते हैं। सम्राट अथवा सम्राज्ञी की उपाधि से विभूषित करना विवेक-हीनता का द्योतक है पर इतना कहा जा सकता है कि हास्य की प्रतिष्ठा तथा जनता

में हास्य की रुचि इन्हीं के कारण हुई। जिस प्रकार हम भारतेन्दु जी के नाटकों को साहित्य में प्रायः सर्वप्रथम नाटक होने के कारण दोषपूर्ण नहीं गिनते उसी प्रकार श्रीवास्तव जी के नाटकों को हास्यरस के प्रारम्भिक नाटक होने के कारण ख़राब नहीं मानते हैं। उनके हास्य-रस के नाटक अत्यन्त कलापूर्ण सिद्धान्तों द्वारा परीक्षा के उपयुक्त नहीं हैं। वे मोलायर (Molaeor) के हास्य से पर्याप्त मात्रा में प्रभावित हैं।

श्रीवास्तव जी की ख्याति का मूल कारण है उनका प्रहसन। 'अच्छा उर्फ़ अक़ल की मरम्मत' तथा 'कुर्सी मैन' सुन्दर प्रहसन हैं। प्रहसन उपहास का मधुर अङ्ग है। उपहास में सामाजिक कुरीतियों का उद्‌घाटन किया जाता है पर प्रहसन में यह घात-प्रतिघात नहीं होता। प्रहसन की अत्युक्तिपूर्ण कथा स्वयं सामाजिकों की कुरीतियों पर मीठी चुटकी लेती है।

उनका 'उलट फेर' मौलिक चरित्र प्रधान नाटक है और यही उनकी सर्वोत्कृष्ट कृति भी है। इसमें वकालत, न्यायालय, तथा उसके अधिकारी वर्ग का मीठा उपहास है।

उपहास की दृष्टि से उन्होंने केवल 'साहित्य का सपूत' लिखा है यद्यपि उनके सभी नाटकों में स्थल स्थल पर उपहास के छींटे मिलते हैं। वकालत पर एक उपहास देखिये:—

"चिरागअली—(डकैतमल से) कुछ परवाह नहीं। तुम घबड़ाना मत। अपने राम का नाम लेकर लटक जाना। हम तो अपील से समझ लेंगे। लाओ इसी बात पर शुकराना।

रामदेव—अब हुजूर फाँसी की सजा होइगै है। अउर ऊपर ते सुकरानो देई ?

चि० अ०—हाँ हाँ फाँसी हुई हमारी बदौलत। अगर हम इतनी

कोशिश न करते तो न जाने क्या होता ? समझे ? लाओ शुकराना।"

श्रीवास्तव जी के नाटकों में शुद्ध हास्य का भी विधान हुआ है। आपके अनेक पात्रों में मनुष्य की विशेष आदतों का भी चित्रण करके हास्य का उद्रेक किया है। उदाहरणार्थः—'मरदानी औरत में सम्पादक बण्टाधार 'स' के स्थान में 'श' का उच्चारण करते हैं। जब पेटूमल साश्चर्य उनसे पूछते हैं, "तुम तो कुछ पढ़े नहीं हो। खत तक लिखना नहीं जानते हो।" तब बण्टाधार उत्तर देते हैं:—

"तभी तो शम्पादक बन गये। लेखक बनते तो लेख लिखना पड़ता, कवि बनते तो कविता करनी पड़ती और शम्पादक बनने में मजे शे बैठे बैठे धन लूट कर तोंद फुलानी पड़ती है, और यों मुफ्त के शाहित्य के शपूत कहलाते हैं। जब शे शम्पादक बने हैं तब शे शाढ़े शत्रह इञ्च तोंद चढ़ गयी है। चाहे नाप के देख लो।" *

श्रीवास्तव जी का हास्य प्राणहीन सा प्रतीत होता है। यत्र तत्र वह हँसाने के प्रयत्न में अश्लीलता की छाप डाल देता है। यों तो गुदगुदाने से भी हँसी आती है पर वह निर्जीव हँसी है। इस प्रकार हम श्री जी० पी० श्रीवास्तव जी के हास्य में हृदय का सहयोग नहीं पाते।

श्रीवास्तव जी के हास्य से अधिक सजीव तथा शिष्ट हास्य की रचना श्री बदरीनाथ भट्ट ने किया है। भट्ट जी हास्य के प्रधान लेखकों में से एक हैं। आप शुद्ध तथा व्यङ्गात्मक प्रहसन की रचना में पटु हैं। 'रगेड' समाचार पत्र के एडिटर की 'धूल

---

* आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास पृ० २६४।

दच्छिना', 'घोंघा वसन्त', 'विवाह विज्ञापन', 'मिस अमरीकन' आदि आपके प्रधान व्यङ्गात्मक प्रहसन हैं।

भट्ट जी का हास्य संयत तथा अश्लीलतारहित है । प्रहसनों के चरित्र, और कथावस्तु के अतिरिक्त उनकी शैली भी हास्य-रस के उपयुक्त है। इस गुण के कारण आपके प्रहसन अधिक रुचिकर हो गये हैं। प्रहसनों में हास्य का वचनावली के आश्रित होना ही आपकी सफलता का मुख्य कारण है।

प्रहसनों के अतिरिक्त हास्य का विधान आपने 'दुर्गावती' में भी किया है। इस नाटक में हास्य की सृष्टि अनेक पात्रों द्वारा हुई है। कई पात्र तो अनेक स्थलों पर हँसाते भी नहीं हैं। भवभूति के 'मालती-माधव' नाटक के समान ही इस नाटक में भी एक ही पात्र के द्वारा हास्य का विधान किया गया है। इसका हास्य चारित्रिक है। यह प्रयास स्तुत्य है पर सफल नहीं। आरम्भ में हँसी तो आती है पर अन्त में देशप्रेम के मनोभाव के सामने उसका चरित्र धूर्ततापूर्ण तथा मिथ्याडम्बरवाला जान पड़ता है । विरोधी भाव (देशप्रेम) हमारी हँसी को दबा देता है।

भट्टजी के व्यंग मार्मिक होते हैं पर 'प्रसाद' जी की सी उनमें गम्भीरता नहीं है। आपने उपहास और व्यंग का विशेष रूप से प्रयोग 'मिस अमरीकन' में किया है और वे पूर्णतया सफल भी हैं। शब्दावली द्वारा हास्य की कितनी सफल रचना की गयी है देखिए :—

"हाकिम—अबे बेवकूफ !

नौकर—(आप ही आप) एक सार्टीफिकेट तो मिला।

हाकिम—घण्टा वण्टा कुछ नहीं तू सब काम सँभाल लेगा।

नौकर—जी हाँ, क्यों नहीं। मैं क्या आदमी नहीं हूँ। आदमी

का काम आदमी न सँभालेगा तो क्या जानवर सँभालेगा।" *

इस प्रकार भट्टजी को विचारपूर्वक देखने से पता लगता है कि वे एक सफल हास्य लेखक थे। व्यंग लेखक की दृष्टि से 'मिस अमरीकन' इस बात का द्योतक है कि वे मार्मिक व्यंग लेखक थे।

'प्रसाद' जी का हास्य भाव के आश्रित, श्री जी० पी० श्रीवास्तव का घटना के आश्रित, भट्ट जी का वचनावली के आश्रित, आचार्य मिश्रबन्धु का हास्य इन तीनों गुणों से युक्त है।

भट्ट जी के ही समान पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' भी उच्च कोटि के हास्य लेखक हैं। परन्तु इन दोनों नाटककारों ने बहुत कम हास्यपूर्ण नाटक लिखे हैं फिर भी जितना लिखा है वह सुन्दर तथा मनोरञ्जक है। उग्र जी के प्रहसनों में 'उजबक' तथा 'चार बेचारे' अधिक प्रसिद्ध हैं। इन्होंने हास्य का उद्रेक कई रीतियों से किया है। 'उजबक' प्रहसन में छायावादी कवि लण्ठ सर्वदा मुक्त छन्द में बोलता है और सण्ठ ब्रजभाषा छन्दों में। अपनी श्रेष्ठता का निर्णय कराने के हेतु वे 'उजबक' सम्पादक के पास जाते हैं। दोनों का वार्तालाप इस प्रकार होता है :—

"लण्ठ—मेरा कहना है ब्रज भाषा मोस्ट रद्दी है,
खारवों की गद्दी है,
नूतनता मौलिकता हीन है
दीन अनवीन है।
और स्वच्छन्द मेरा राग घट बढ़ है—
छन्द जो रबड़ है।
ओल्ड ब्रजभाषा में कलङ्क है, सुलङ्क है

* आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास पृष्ठ २६४।

डर्टी पर्यंक है,
कामिनी है, कुच है, कालिन्दी का किनारा है,
तेरहीं सदी की गण्डकी की गन्दी धारा है।

* * *

सण्ठ—(लण्ठ को ललकार कर)
रुको ! रुको !!! मत क्रोध दिलाओ,
झुको ! झुको !! मत बात बढ़ाओ।
अब मत राग बेसुरा गाओ,
ससुर बनो सुर को अपनाओ। *

यहाँ पर हास्य रस का विधान इन दोनों कवियों—छायावादी और ब्रजभाषा—में एक विचित्र आदत—सर्वदा पद्य में बात करने—के विधान के कारण हुआ है।

---

* आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास पृष्ठ २६५।

हिन्दी के कवि

तथा

हास्य-रस

हिन्दी के कवि तथा हास्य-रस

रस का कविता से सुदृढ़ सम्बन्ध है; रस कविता के लिए अनिवार्य है। बिना इसके कविता प्राणहीन शरीर की भाँति है बिना रस के काव्य में वह रमणीयता, वह सौन्दर्य तथा मनमोहकता कहाँ जो रस के होने पर भरी सी होती है। बालक रूपी हिन्दी साहित्य का लालन-पालन कुछ विचित्र रीति से हुआ। बाल्यकाल में मुस्कान (हास्य) के स्थान पर वीर भक्ति तथा शान्त रसों का उस पर आधिपत्य रहा। कहाँ वह मृदु मुस्कान और कहाँ वह वीरता और भक्ति ? काव्य साहित्य का सबसे प्राचीन अङ्ग है। इसी कारण कविता वीर तथा शान्त रसों से चिर-परिचित है। इन दोनों रसों की तुलना में हास्य साहित्य के लिए नयी चीज है। प्रायः सभी कवियों की प्रवृत्ति अन्य रसों की भाँति ही हास्य रस की ओर भी पायी जाती है परन्तु गोस्वामी जी के समय से हमें हास्य रस का विकसित रूप दिखायी देता है। यों तो कबीर ने अपने तीखे व्यङ्ग बाण चलाकर यत्र तत्र हँसने का अवसर दिया है पर गोस्वामी जी के 'मानस', 'कवितावली' तथा 'गीतावली' में हमें हास्य के अनेक उदाहरण मिलते हैं यद्यपि भक्ति, नीति, शील तथा मर्यादा के आवरण में पड़कर

उनका हास्य अधिक गम्भीर हो गया है तथापि उनमें कहीं कहीं पर सुन्दर हास्य उपलब्ध होता है। उदाहरणार्थः—

"ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी,
परसे पद मञ्जुल कञ्ज तिहारे।"

सूर में तो भक्ति काल के सभी कवियों में से अधिक हास्य मिलता है। उनका हास्यमय विनोद अनेक पदों में चित्रित है। भ्रमर गीत प्रसङ्ग में गोपिकाओं और उद्धव के वार्तालाप में उत्कृष्ट हास्य के अनेक उदाहरण हैं। सूर का हास्य मुख्यत: वाग्वैदग्ध तथा व्यङ्ग के आश्रित है। निरुत्तर उद्धव के प्रति गोपिकाओं के उलहनों में भी हास्य का उद्रेक होता है। वास्तव में सूर के हास्य विधान की कुशलता तब प्रकट होती है जब बालकृष्ण से उनकी माता दधि चोरी के विषय में पूछती हैं और वे भाँति भाँति के बहाने बताते हैं।

भक्ति काल में प्रकट हास्य की अधिक रचना नहीं हो सकी। जितना भी हास्य उस समय लिखा गया वह आराध्य के प्रति उपालम्भ के रूप में अधिक था। भक्ति काल से रीति काल में कवि समुदाय हास्य की ओर विशेष रूप से आकृष्ट रहा। आश्रय तथा पुरस्कार के लिए इस समय प्रायः सभी कवि एक दरबार से दूसरे दरबार में झाँकते फिरे। अत: राजा तथा दरबार की इच्छानुकूल कविता करना भी उनके लिए आवश्यक हो गया था। इस समय हास्य के विषय कृपण नरेश तथा देवता रहे। सूदन कवि के शब्दों में पार्वती जी की परेशानी का हाल सुनिए:—

"बाप विष चाखै भैया षटमुख राखै देखि,
आसन में राखै बस बास जाको अचलै।
भूतन के छैया आस पास के रखैया,
और काली के नथैया हू के ध्यान हू ते न चलै॥

बैल बाघ बाहन बसन को गयन्द खाल,
भाँग को धतूरे को पसारि देत अचलै।
घर को हवाल यह संकर की बाल कहै,
लाज रहै कैसे पूत मोदक को मचलै॥" *

'फेरन' कवि 'चतुरानन की चूक' देखिए कितनी हास्यात्मक शैली में गिनाते हैं:—

"गृहिन दरिद्र, गृह त्यागिन विभूति दीन्ही,
पापिन प्रमोद पुन्यवन्तन छलो गयो।
सनि को सुचित्त रवि ससि को कलेस,
लघु व्यालन अनन्द सेस भार तें दलो गयो॥
'फेरन' फिरावत गुनिन गृह द्वार द्वार,
गुन ते विहीन ताहि बैठक भलो दयो।
कौन कौन चूक कहौं तेरी एक आनन सों,
नाम चतुरानन पै चूकतो चलो गयो॥" ऽ

पिता की श्राद्ध में दुर्गन्धियुक्त पेड़े भेजने पर 'बेनी' कवि उस कृपण पर व्यङ्ग बाण का प्रहार करते हैं:—

"चींटी न चाटत मूसे न सूँघत,
माँछी न बास ते आवत नेरे।
आनि धरे जब ते घर में,
तब ते रहै हैजा परोसिनि घेरे॥
माँटिहु में कछु स्वाद मिलै इन्हैं
खाय सो ढूँढत हर्र बहेरे।

---

* माधुरी जुलाई १६४३ पृष्ठ ६३३

ऽ ,, ,, ,, ,, ६३६

चौंकि उठ्यो पितुलोक में बाप ये,
आप के देखि सराध के पेरे ॥" *

'गिरधर कविराय' तथा कविवर 'गङ्ग' की कविता में हास्य के सुन्दर उदाहरण उपलब्ध होते हैं। इसी समय महाकवि देव, पद्माकर, वैताल इत्यादि कवियों ने भी हास्य का अच्छा सृजन किया।

भारतेन्दु के प्रकाश से समस्त साहित्य आलोकित हो उठा। हमारी अज्ञान निद्रा भङ्ग करने के लिए बङ्किम की भाँति बाबू हरिश्चन्द्र ने भी गम्भीर तथा हास्य दोनों ही प्रकार के साहित्य की रचना की। 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' में उन्होंने समय समय पर अनेक व्यङ्गात्मक हास्य लिखे थे। 'परिहासिनी' नाम से भारतेन्दु जी ने स्वरचित तथा सङ्कलित चुटकुलों की एक सुन्दर पुस्तक प्रकाशित की थी। उसमें एक प्रसङ्ग मुशायरे का है जिसका शीर्षक इस प्रकार है —

"मुशायरा; चिड़ियामार का टोला, भाँति भाँति का जानवर बोला। इसी "चिड़ियामार के टोले" में मुशायरे के द्वारा बाँके, तिरछे लोगों की थोड़ी सी नुमायश दिखायी गयी है। बिगड़ी रुचि के लोगों को वे एक प्रकार से दो पैर का जानवर समझते थे। इसी टोले के मुशायरे में एक नयी रोशनी की प्रेमिका अपने प्रेमी से कहती है :—

"लिखाय नहीं देत्यो पढ़ाय नहीं देत्यो। सैंया फिरंगिनि बनाय नहीं देत्यो ॥
लहँगा दुपट्टा नींक ना लागै। मेंमन का गवनु मँगाय नहीं देत्यो ॥

× × ×

---

* माधुरी जुलाई १९४३ पृ० ६३७

हमना सोइबे कोठा अटरिया । नदिया प बँगला छवाय नहिं देत्यो ॥
सरसों का उबटन हम ना लगैबै । साबुन से देहियाँ मलाय नहि देत्यो । *

इन पंक्तियों में भारतेन्दु जी पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण तथा अनुचित रुचि पर व्यङ्ग करते हैं । ऊपर उल्लेख हो चुका है कि वे सुधारवादी थे और देश की दुर्दशा देखकर जागृति का समावेश करने की इच्छा से हास्य की रचना करते थे । 'भारतेन्दु जी का चूरन' बहुत प्रसिद्ध है । यहाँ पर उसका भी स्वाद लेना चाहिए:—

"हिन्दू चूरन इसका नाम ।
विलायत पूरन इसका काम ॥
चूरन जब से हिन्द में आया ।
इसका धन बल सभी घटाया ॥
चूरन जम के सब जो खावे ।
दूनो रिश्वत तुरत पचावे ॥
चूरन सभी महाजन खाते ।
जिसमें जमा हज़म कर जाते ॥
चूरन साहब लोग जो खाते ।
सारा हिन्द हज़म कर जाते ॥
चूरन पुलिस वाले खाते ।
सब क़ानून हज़म कर जाते ॥" ×

इस चूरन के लटके में शासक वर्ग तथा शोषक वर्ग पर व्यङ्ग किये गये हैं । भारतेन्दु जी का हास्य मुख्यतः व्यङ्ग मिश्रित होता था जिसका लक्ष्य होना था राजनैतिक तथा सामाजिक कुरीतियों की चुटकी लेना ।

---

* साहित्यकी पृष्ठ ६६

× साहित्यिकी

भारतेन्दु जी के बाद उस युग के सबसे बड़े व्यङ्ग लेखक तथा हास्यप्रिय पं० प्रतापनारायण जी मिश्र का उल्लेख अनिवार्य है। मिश्र जी के व्यङ्ग में समाज सुधार की अपूर्व शक्ति है। कहना न होगा कि अंग्रेज व्यङ्ग लेखकों ने अपने साहित्य के द्वारा परवर्ती समाज में बहुत सुधार किये थे। मिश्र जी अपने साहित्य में इसी प्रकार के सुधारकों में गण्यमान हैं। देशवासियों के आलस्य तथा मूर्खता और शासक वर्ग का अत्याचार पूर्ण व्यवहार देखकर मिश्र जी ने निम्नलिखित कविता रची थी :—

'जहाँ देखिए म्लेच्छ सेना के हाथों। मिटे नामियों के निशां कैसे कैसे।
बने पदके गौरंड भाषा द्विजाती। मुरीदाने पीरो मुग़ाँ कैसे कैसे।
बसो मूर्खते देवि! आर्यों के जी में। तुम्हारे लिए हैं मकां कैसे कैसे।
अनुद्योग, आलस्य, सन्तोष सेवा। हमारे भी हैं मिहरबां कैसे कैसे।"S

'जन्म सुफल कब होय ?' शीर्षक कविता में सभी वर्ग तथा वर्णों पर तीव्र व्यंगात्मक हास्य की रचना की गयी थी। 'जन्म सुफल कब होय ?' पर सेठजी का मत देखिए :—

"बुधि विद्या बल मनुजता, छुवहिं न हम कहँ कोय।
लछिमिनियाँ घर में बसैं, जन्म सुफल तब होय।" *

गौरांगदेव उवाच—

नित हमरी लातैं सहैं, हिन्दू सब्र खोय।
खुलै न इंगलिस पालिसी, जन्म सुफल तब होय॥ *

पुरोहित उवाच—

बनियन की बुधि धरम धन, गंगा देहु डुबोय।
नित्त टका सीधा मिलै, जन्म सुफल तब होय॥ *

S प्रताप पीयूष पृष्ठ १८५।

* " " " १८६।

मिश्र जी ने अपनी कविता में व्यङ्ग का प्रयोग अधिक किया है। एक वास्तविक आलोचक की भाँति दाँये बाँये सामने जो भी दोषों से युक्त दिखायी पड़ा उन्होंने उस पर व्यङ्ग बाण का प्रहार किया। उनके व्यङ्ग में हँसाने की अपूर्व शक्ति थी। व्यङ्ग के लक्ष्य अधिकतर राजनैतिक तथा सामाजिक दोष होते थे।

मिश्र जी ने दो प्रकार के हास्य की रचना की है प्रथम व्यङ्गात्मक हास्य जो उद्देश्य मिश्रित होता था तथा दूसरा शुद्ध हास्य। शुद्ध हास्य में उनकी 'बुढ़ापा' कविता बहुत ही प्रसिद्ध है। उदाहरणार्थ:—

"हाय बुढ़ापा तोरे मारे अब तो हम नकन्याय गयन,
करत धरत कछु बनतै नाहीं कहाँ जान औ कैस करन।
छिन भरि चटकि छिनै माँ मद्धिम जस बुझात खन होय दिया,
तैसे निखवस देखि परत हैं हमरी अक्किल के लच्छन।"
"अस कछु उतरि जाति है जीते बाजी ब्यरिया बाजी बात।
कैस्यो सुधि ही नाहीं आवति मूड़ुइ काहे न दै मारेन॥ *
कहा चहों कछु निकरत कछु है जीभि रौंड़ का है यहु हालु।
कोऊ याकौ बात न समुझै चाहै बीसन दाँय कहन॥"

इसी प्रकार 'सभा वर्णन' कविता में भी शुद्ध हास्य का प्रयोग हुआ है। हास्य तथा करुणा का अद्भुत सम्मिश्रण 'तृप्यन्ताम्' में है। कबीर तथा भूषण के बाद यदि ओजपूर्ण व्यङ्ग कविता हमें कहीं मिलती है तो मिश्र जी की रचना में।

युग तथा समाज की प्रवृत्ति के अनुकूल ही मिश्र जी मुख्यत: व्यङ्ग लेखक थे। परन्तु उनके व्यङ्ग में हास्य उद्रेक की अपूर्व शक्ति थी।

---

* प्रताप पीयूष पृष्ठ २०२।

मिश्र जी तथा श्री बालकृष्ण समकालीन थे। भट्ट जी ने भी कविता में हास्य का प्रयोग किया है जो मुख्यत: व्यङ्ग के आश्रित है।

उसी युग के उत्कृष्ट व्यङ्गात्मक गद्य लेखक श्री बालमुकुन्द जी गुप्त ने सामान्य मानवता को विषय बनाकर हास्यात्मक काव्य की रचना की। 'विज्ञ विरहिनी' लिखित पत्र से कुछ अंश उद्धृत है:—

"जो प्यारे छुट्टी नहिं पाओ, तो यह सब चीज़ें भिजवाओ।
चमचम पाउडर, सुन्दर सारी, लाल दुपट्टा जर्द किनारी।
हिन्दू बिस्कुट, गोमेटम, तेल सफाचट औ' अरबी गम।
हम तुम जिनको करते प्यार, वह तस्वीरें भेजो चार।" *

गुप्त जी ने व्यङ्ग से मुक्त शुद्ध हास्य की भी रचना की है।

भारतेन्दु युग के लेखकों में श्री बद्रीनारायण 'प्रेमघन' भी उल्लेखनीय हैं। इनके हास्य में भी युग की प्रवृत्तियों की स्पष्ट छाप है।

भारतेन्दु युग के काव्य साहित्य पर दृष्टिपात करने से एक विचित्र कोलाहल तथा हलचल सी प्रतीत होती है। इस समय तक कवि समुदाय प्राय: नायिका भेद तथा नख-शिख वर्णन भूल सा चला था और उनका ध्यान महामारी, अकाल, टैक्स इत्यादि इत्यादि से उत्पादित देश की दशा की ओर आकृष्ट हो चुका था। वे इन्हीं विषयों को लेकर लोक-गीतों की रचना में शान्ति का अनुभव कर रहे थे तथा उनके अभिव्यञ्जना का माध्यम व्यङ्ग तथा हास्य निश्चित किया। गंभीर साहित्य के साथ ही व्यंग तथा हास्य की भी सृष्टि हुई। इस समय के प्राय: सभी कवि सजीव (जिन्दादिल) तथा स्वच्छन्द प्रकृतिवाले थे। भारतेन्दु की 'देखी तुमरी कासी' तथा मिश्र जी का 'कानपुर माहात्म्य' में धार्मिक कुरीतियों पर भी व्यङ्ग किये गये हैं।

---

* आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास पृ० ५८

द्विवेदी-युग में हास्य की भावना कम पड़ गयी। मिश्र जी की भाँति सजीव तथा घर फूँक तमाशा देखने वाले लेखक इस समय नहीं रह गये थे। संघर्ष इस युग में बहुमुखी हो चला। फलतः लेखकों की प्रतिभा भी अनेक ओर बँट गयी थी। व्यङ्ग का प्रयोग अब उतना अधिक न रह गया जितना भारतेन्दु-युग में था। व्यङ्ग के लक्ष्य में भी महान् परिवर्तन हो गया फिर भी भारतेन्दु-युग की कुछ विशिष्टताएँ पण्डित नाथूराम 'शङ्कर' में अवशिष्ट थीं। 'शङ्कर' जी आर्यसमाजी थे। वे अन्धविश्वास के घोर विरोधी थे। उनके पास विरोध प्रदर्शन का अस्त्र था व्यङ्ग। ब्राह्मणों पर किये गये एक व्यङ्ग को देखिये:—

ठेके पर लेकर वैतरणी देकर दाढ़ी मूछ,
वाटर बाइसिकिल के द्वारा बिना गाय की पूछ;

मरों को पार उतारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा। *

'शङ्कर' जी का व्यङ्ग न केवल अपने यहाँ के पुराने विचारों पर होता था वरन् अत्यन्त नवीन विचारों का भी वे स्वागत न करते थे। पाश्चात्य रहन सहन की बढ़ती हुई प्रवृत्ति देखकर वे शान्त न राह सकते थे। अंग्रेजी सभ्यता के रंग में रँगे हुए भारतीय नागरिकों को देख कर उनके मन में असन्तोष की भावना जाग्रत हो उठती थी। निम्नलिखित कविता में ब्रजराज से पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण करने के बहाने कवि भारतीय जनों पर व्यंग करता है:—

---

* आधुनिक हिन्दी का विकास पृ० ६०

"भड़क भुला दो भूतकाल के सजिए वर्तमान के साज।
फैशन फेर इण्डिया भर के गोरे गाड बनो ब्रजराज।
गौर वर्ण वृषभानु सुता का काढ़ो काले तन पर तोप।
नाथ! उतारो मोरमुकुट को सिर पै साजो साहिबी टोप।
पाउडर चन्दन पोंछ लपेटो आनन की श्री ज्योति जगाय।
अंजन अँखियों में मत लाओ आला ऐनक लेहु लगाय। *

फब्तियाँ तथा फटकारें आपकी कविता की एक विशेषता है। "ईश गिरिजा को छोड़ि ईशु गिरजा में जाय" वाली फब्तियाँ आज कल के फैशन के उपासकों पर कही गयीं हैं।

द्विवेदी-युग के आरम्भ में हास्य के लेखकों में श्री मिश्रबन्धु विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इतिहास, आलोचना, कविता, निबन्ध तथा नाटक इत्यादि साहित्य के सभी अङ्गों में आपने रचनात्मक कार्य किया है। इन्हीं नाटकों के अन्तर्गत आपने हास्यपूर्ण कविताओं की रचना भी की है। नाटकों में इन कविताओं के समावेश करने का अभिप्राय दर्शकों तथा पाठकों का मनोरञ्जन मात्र है।

आपका हास्य, व्यंग, ईर्षा आदि से रहित शुद्ध हास्य है। 'यारो अब सब आस नसानी।' ऽ शुद्ध हास्य की दृष्टि से एक उत्तम रचना है। 'कूड़ी पायन थाँभि' वाली कविता (जो पृष्ट १३ पर उद्धृत की जा चुकी है) में लेखकों ने भँगेड़ियों के आमोद प्रमोद का चित्रण बड़ी ही कुशलता के साथ किया है 'छूरा सबसे अस्त्र निराला' भी हास्य रस से ओतप्रोत है। (शिवाजी पृ० १०४)

मिश्रबन्धु प्रकट तथा अप्रकट दोनों प्रकार के हास्य विधान में कुशल हैं। यह निश्चय है कि श्रीमिश्रबन्धुजी नाटकों के अन्तर्गत

---

* अनुरागरत्न पृ० २२७

ऽ शिवाजी पृ० ७१

कविताओं द्वारा हास्य का सृजन करने में पूर्णरूपेण सफल हुए हैं।

वर्तमान काल में 'निराला' जी छायावाद के प्रवर्तकों में से हैं। अतः उनके काव्य के विषय गुरु-गम्भीर होते हैं फिर भी उनकी कविता में हास्य के उदाहरण मिल ही जाते हैं। 'अनामिका' में 'सरोज स्मृति' कविता हास्य का सुन्दर उदाहरण है। यह हास्य व्यङ्ग मिश्रित है। 'कुकुरमुत्ता' तथा 'अनामिका' के प्रकाशन काल के बीच में कवि की हास्य रुचि तथा शैली में महान् परिवर्तन दिखायी देता है। 'सरोज स्मृति' में व्यङ्गात्मक हास्य है और अपकर्ष द्वारा हास्य का उद्रेक किया गया है। 'रानी और कानी' में एक कहारिन की कानी लड़की रानी की रूपरेखा का वर्णन करके लेखक ने अपकर्ष के द्वारा हँसाने का प्रयत्न किया है :—

माँ कहती थी उसको रानी
आदर से, जैसा था नाम,
लेकिन था उल्टा ही रूप
चेचक-मुँ-दाग़, काली नाक चपटी
गंजा सर एक आँख कानी। *

इसी शब्द-चित्र के द्वारा कवि ने हँसाने का प्रयत्न किया है परन्तु यहाँ पर करुण रस इतना अधिक बलवान् हो जाता है कि हास्य का उद्रेक होता ही नहीं। 'कुकुरमुत्ता' कविता में कवि ने व्यङ्गात्मक हास्य का उद्रेक किया है।

कुछ समय से कवि समुदाय हास्य-रस की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ है परन्तु हास्य के विषय में एक महान् परिवर्तन

* कुकुरमुत्ता पृ० ३२

दृष्टिगोचर होता है। आधुनिक कवियों के लिए आज का फैशन सबसे प्रमुख हास्य का विषय है। इनमें से श्री 'पढ़ीस', 'बेढब' जी, 'चोंच' जी तथा श्री चन्द्रकुँवर बर्त्वाल उल्लेखनीय हैं।

'पढ़ीस' जी का हास्य गद्य तथा पद्य दोनों में ही समान रूप से सुन्दर है। जिस प्रकार उनकी गद्य रचनायें 'चुनाव की धूम' तथा 'बात नहीं बतकहाव टेढ़' हास्य के लिए प्रसिद्ध हैं उसी प्रकार उनकी हास्यपूर्ण कविताओं का संग्रह 'चकल्लस' जन-प्रिय है। 'पढ़ीस' जी का हास्य सुष्टु तथा शिष्ट है। प्रत्येक प्रयुक्त शब्द हास्य के लिए आवश्यक प्रतीत होता है। वे मुख्यतः व्यङ्गात्मक हास्य के लेखक थे। उनका जीवन ही स्वयं व्यङ्ग था। वह पीड़ाओं को व्यङ्ग बनाकर उनसे खेला करते थे। उनका व्यङ्ग हमारे दोषों की आलोचना करता है।

'पढ़ीस' जी रूढ़िवादी थे। दूसरे शब्दों में वे नयी सभ्यता के विरोधी थे। एक व्यङ्ग लेखक के लिए यह दोष की बात है। उसे तो पक्षपात रहित होकर प्रत्येक वस्तु को एक तार्किक की दृष्टि से देखना उचित है।

'पढ़ीस' जी की कविताओं में हँसाने की अच्छी शक्ति है। उदाहरणार्थ 'काकनि जो हमहूँ पढ़ि पाइत' तथा 'काकन जब राम घरै जायहु' शीर्षक कविताएँ व्यङ्गपूर्ण होते हुए भी हँसाने में समर्थ होती हैं। *

'पढ़ीस' जी की भाँति श्री अन्नपूर्णानन्द जी भी हास्य के सफल लेखक हैं। पाश्चात्य सभ्यता के रङ्ग में रँगी हुई अपने देश की देवियों पर उनका व्यङ्ग पठनीय है :—

"पिल्ला लीन्हें गोद मा मोटर भई असवार,
अली भली घूमन चलीं किये समाज सुधार।

---

* माधुरी 'पढ़ीस अंक'

किये समाज सुधार हवा योरप की लागी,
शुद्ध विदेशी चाल ढाल सों मति अनुरागी।
मियाँ मचावैं सोर करैं अब तोबा तिल्ला,
पूत धाय कै गोद, खेलावैं बीवी पिल्ला।" *

अन्नपूर्णानन्द जी ने शुद्ध हास्य की भी रचना की है।

'बेढब' जी परिहास-काव्य के कुशल लेखक हैं। आपने गोस्वामी जी की कविता 'तुलसी या संसार में......' के आधार पर परिहास काव्य लिखा है जो इस प्रकार है :—

" 'बेढब' सहि संसार में कबहुँन मिलिहै धाय।
का जानै केहि भेष में सी आई डी मिलि जाय।"+

'बच्चन' जी की कविता 'मैं जीवन में कुछ कर न सका' तथा रसखानिजी की 'मानुस हौं तो...' के आधार पर परिहास काव्य (Paradies) विशेष रूप से पठनीय हैं। बेढब जी का हास्य अधिकतर हास्य के ही लिए है। वह कुछ देर के लिये हमारा मनोरञ्जन भले ही कर दे पर वह स्थायी काव्य नहीं कहा जा सकता है।

'चोंच' जी भी बेढब की ही भाँति परिहास काव्य-लेखक हैं। उनके इस काव्य में हँसाने की अपूर्व शक्ति है। वे तो संसार के दुःखों से पीड़ित मानव को दो क्षण के लिए हँसा देना ही अपना उद्देश्य समझते हैं। आपका हास्य अतिहसित तथा अपहसित की श्रेणियों में ही आ सकता है।

'सूर' के पद 'तजो मन हरि बिमुखन को संग' के आधार पर आपका परिहास काव्य:—

* साहित्यिकी पृ० ८०
+ " " ८१

"तजो मन क्लब विमुखन को संग" *

पठनीय है।

गोस्वामी जी की कविता के आधार पर भी आपका परिहास्य काव्यः—

"हरिऔध के द्वारे सकारे गया
कर दाढ़ी पै फेरते वे निकसे" S

भी अत्यन्त हास्यपूर्ण है।

कबीर की साखियों के आधार पर लिखित उनका परिहास-काव्य देखिए कितना हास्यपूर्ण है:—

"नेता ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
चंदा सारा गहि रहै, देय रसीद उड़ाय॥" +

तथा "यह घर थानेदार का, खाला का घर नाहिं।
नोट निकारै पग धरै, तब पैठै घर माहिं। ×

वर्तमान काल में व्यंगपूर्ण हास्य लिखने वालों में विशेष रूप से उल्लेखनीय डा० रामविलास शर्मा एम. ए., पी-एच. डी. तथा श्री चन्द्रकुँवर बर्त्वाल उल्लेखनीय हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि डाक्टर शर्मा और बर्त्वाल जी गद्य में भी समान रूप से सफल हास्य सृजक हैं। 'हंस', 'सुधा', तथा 'माधुरी', में डाक्टर शर्मा की व्यंगात्मक तथा हास्य से ओतप्रोत कविताओं का प्रकाशन समय समय पर होता रहा है। "अरे ताड़ के पेड़" कविता में उनके तीव्र व्यंगों के दो चार उदाहरण उपलब्ध

---

* खरी खोटी पृ० ८०
S " " " ८२
+ " " " ६८
× " " " ६८

हो सकते हैं। डाक्टर शर्मा के व्यंग में सजीवता अधिक है। उनका व्यंगात्मक हास्य सजीवता के साथ ही साथ सुष्ठु तथा परिष्कृत है। उनमें मनोरञ्जन की मात्रा भी किसी प्रकार कम नहीं है।

श्री चन्द्रकुँवर बर्त्वाल भी अपने समय के सफल तथा सिद्ध-हस्त व्यंगात्मक हास्य के रचयिता हैं। "मैकौले के खिलौना" में देखिये बर्त्वाल जी ने अँग्रेजी शिक्षा के प्रभाव तथा कुरीतियों का कितना अच्छा व्यंगपूर्ण हास्य चित्रित किया है। लार्ड मैकौले ने भारतवासियों के लिये अँग्रेजी शिक्षा क्यों रक्खी थी यह इस शीर्षक में कुशलता से दिया गया है। अंग्रेजी शिक्षा के अध्ययन में पूर्ण गृहस्थी स्वाहा कर देने के बाद हमारा क्या मूल्य होता है, यह बर्त्वाल जी ने निम्नलिखित पंक्तियों में दिखाया है :—

"मेड इन जापान खिलौने से
सस्ते हैं लार्ड मकाले के,
ये नये खिलौने इनको लो
पैसे के सौ-सौ, दो-दो सौ।

ये कभी कभी हो जाते हैं
सस्ते हजार भी पैसे को,
ये सस्ते बहुत इन्हें ले लो
पैसे के सौ-सौ, दो-दो सौ।"

अंग्रेजी पढ़े लिखे बाबू लोगों की उपयोगिता देखिये:—

"अंग्रेज़ी ख़ूब बोलते ये,
सिगरेट भी अच्छा पीते ये,
बच्चे भी पैदा कर सकते,
हो सकते हैं सौ से दो-दो सौ।

ये सदा रहेंगे बन सेवक—
हर रोज़ करेंगे झुक सलाम।
हैं कहीं नहीं इस दुनिया में
मिलते इतने सस्ते गुलाम!

ये तुम्हें सदा खुश रक्खेंगे,
इनसे तुम बिल्कुल नहीं डरो,
ये सस्ते बहुत इन्हें ले लो—
पैसे के सौ-सौ दो-दो सौ।"

पुरानी प्रथा के अनुसार आज सभी त्योहार मनाये जाने पर वह भावना कहाँ? दीपमालिका व विजयादशमी आज भी मनाई जाती है, पर जब उस भावना का ही अभाव है तो 'लकीर के फकीर' बने रहने से क्या लाभ? बर्त्वाल जी की कविता 'रावण दहन' पुरानी लकीर पीटने वालों पर व्यंग है। 'रावण-दहन' स्मरण दिलाता है कि रावण को मर्यादा पुरुषोत्तम ने अत्याचारों का नाश करने के लिए मारा था। परन्तु आज हममें उस भावना का अभाव है जिसके द्वारा अत्याचारी का नाश कर सके।

'पूजा' और 'ग्रहण' नामक कविताओं में धार्मिक कुरीतियाँ हँस-खेल रही हैं।

'दो छतरमंज़िल' में ऐतिहासिक संस्कृति का विषादपूर्ण हास्य है।

'गधा' तथा 'गधे के प्रति' राष्ट्रीय समस्याओं की प्रतीकात्मा व्यंग पूर्ण हँसी है :—

"तुम रहते हो राजाओं की तरह शान से,
छोटा काम तुम्हारा है—मैले कपड़ा को

ले जाना घाटों तक और धुले कपड़ों को
पहुँचाना धोबी के घर तक—बस इतना सा।
और बेच अपनी स्वतंत्रता तुमको होता,
कितना लाभ, ख्याल तुमको इसका होगा ही,
कोई हैं दुनिया का नक़शा आज पलटते,
लड़ते तेज हवा में, लड़ते समुन्दरों में,
आज़ादी के लिये जिगर का खून बहाते।"

'भाषा की समस्या' पर 'अल्लाह की जबान' में विनोदपूर्ण चुटकियाँ ली गई हैं।

"पंडित जी को आगे पा—
बोले अल्ला आँख बचा—
कुल कुल ताकुल कुल-ए-कलाम।"
और मुल्ला जी से ईश्वर संस्कृत में बोले—
"मो मो मुल्ला ! त्वम् ओम् ! ओम् !"

प्रतिभासम्पन्न इस कवि की लेखनी हँसी का सदुपयोग जीवन तथा साहित्य के परिमार्जन के हेतु करती है।

कहानी साहित्य में हास्य

कहानी साहित्य में हास्य

भारतेन्दु युग में कोई भी लेखक कहानी की ओर आमुख नहीं हुआ था। उनके आकृष्ट न होने के कई कारण थे। सर्व प्रथम वह जागृत का युग था। साहित्यिक जागृति के साथ ही साथ राजनैतिक तथा सामाजिक जागृति भी हुई। देश की दुर्दशा, टैक्स तथा राजकीय अन्य अत्याचारों के विरुद्ध सर उठाने के हेतु व्यङ्ग तथा निबन्ध का ही प्रयोग उचित तथा उपादेय था अतः वास्तविकता को छोड़कर कहानी के कल्पित जगत् की ओर कोई भी लेखक अग्रसर न हुआ।

वर्तमान-साहित्य के पूर्वार्ध काल में कहानी साहित्य का जन्म हुआ परन्तु विकास मन्द गति से ही हुआ। कहानी का प्रारम्भ तथा विकास मुख्यतः मासिक और साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं के कारण हुआ। यदि हम कहें कि सरस्वती की जन्मतिथि ही कहानी साहित्य की जन्म तिथि है तो असङ्गत न होगा। 'सरस्वती' १९०० ई० में प्रयाग से प्रकाशित हुई। पहले कुछ समय तक इस पत्रिका में अनूदित कहानियों का प्रकाशन हुआ परन्तु शीघ्र ही मौलिकता ने अनुवाद का स्थान ले लिया। किशोरीलाल गोस्वामी लिखित सर्वप्रथम मौलिक कहानी 'इन्दुमती' सरस्वती में जून १९०० में प्रकाशित हुई।

गोस्वामी जी के पश्चात् पार्वतीनन्दन वङ्ग महिला (१९०७), प्रसाद जी (१९११), प्रेमचन्द, सुदर्शन, कौशिक, चन्द्रधर शर्मा, गुलेरी, ज्वालादत्त शर्मा आदि कहानी के क्षेत्र में आये। यह कहानी साहित्य का शैशव काल था। इस कारण कथावस्तु गम्भीर वस्तुओं के आलम्बित रही। इस समय यथार्थवादी, आदर्शवादी, मनोवैज्ञानिक तथा प्रेमप्रधान कहानियों की ही अधिक रचना हुई। जासूसी, साहसिक तथा रहस्यपूर्ण कहानियों की रचना भी पर्याप्त मात्रा में हुई परन्तु हास्य की ओर किसी लेखक का विशेष ध्यान नहीं गया।

सर्वप्रथम हास्य-पूर्ण कहानियों के लिखने का श्रेय श्री जी० पी० श्रीवास्तव को है। उनको सर्वप्रथम हास्यपूर्ण कहानी 'इन्दु' अप्रैल १९१२ में 'पिकनिक' नाम से प्रकाशित हुई। इसके पीछे तो श्रीवास्तवजी अनेक हास्यपूर्ण कहानियाँ भिन्न-भिन्न पत्रिकाओं में लिखते रहे जिनका संग्रह बाद में 'लम्बी दाढ़ी' नाम से प्रकाशित हुआ। श्रीवास्तव जी ने अपनी कहानियों में घटना तथा चरित्रचित्रण द्वारा हास्य का उद्रेक किया है। इन कहानियों में असङ्गत, प्रत्युक्ति तथा अतिरञ्जित बातों का समावेश प्रचुरता के साथ किया गया है इस कारण हास्य उद्रेक का प्रयत्न प्रायः असफल हुआ है। आपकी कहानियों में यत्र तत्र अशिष्ट हास्य की भी छटा दिखायी पड़ती है। अधिकांश कहानियों में अति नाटकीय प्रसङ्गों की अवतारणा मात्र मिलती है जिसके कारण हास्योत्पादन में बाधा पड़ती है।

कहानी साहित्य में श्री जी० पी० श्रीवास्तव के प्रारम्भिक हास्य के जो भी उदारहण मिलते हैं वे नगण्य हैं। कहानी में सर्वप्रथम हास्य लेखक श्री वास्तव जी ही हैं अतः उनके दुर्गुणों की ओर ध्यान न देकर उन्हें पथ-प्रदर्शक मानना ही अधिक उपयुक्त

होगा। श्रीवास्तवजी द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर ही अन्य लेखक अग्रसर हुए।

प्रेमचन्द जी की कहानियों के विषय मुख्यतः गम्भीर होते हैं परन्तु उनकी दो चार कहानियाँ हास्ययुक्त भी हैं। उन्होंने मोटेराम शास्त्री को अपनी कहानियों का नायक बनाकर कुछ मनोरञ्जक कहानियाँ लिखी हैं जिनमें उच्चकोटि का हास्य मिलता है। मोटेराम तथा उनके मित्र चिन्तामणि प्राचीन काल के नाटकों के विदूषकों की भाँति बड़े ही पेटू, भुक्खड़ तथा हास्य-प्रिय ब्राह्मण हैं। मोटेराम का 'सत्याग्रह' तो इतना सुन्दर तथा मनोरञ्जक है कि हास्यपूर्ण कहानियों में उसका स्थान बहुत ही ऊँचा रहेगा।

प्रेमचन्द चरित्रप्रधान कहानियों के सिद्धहस्त लेखक थे। पात्र के चरित्र को वे अत्यन्त निकट तथा अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से देखते थे। उनकी कहानियों में चरित्र-चित्रण द्वारा ही हास्य का उद्रेक किया गया है।

श्रीबदरीनाथ जी भट्ट अधिकतर प्रहसन तथा नाटक लेखक की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं परन्तु आपने कुछ हास्यपूर्ण कहानियाँ भी लिखी हैं जिनमें 'टटोलूराम जी टलास्त्री' शुद्ध हास्य से ओत-प्रोत हैं। इस कहानी में चरित्र-चित्रण द्वारा हास्योत्पादन किया गया है। टटोलूराम टलास्त्री जी का चरित्र-चित्रण व्यङ्गात्मक हास्य से परिपूर्ण है।

कहानी साहित्य में हास्य का प्रयोग करने वालों में श्री अन्न-पूर्णानन्द जी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। साहित्य के इस अङ्ग में जितना सुन्दर हास्य अन्नपूर्णानन्दजी ला सके हैं उतना अन्यत्र दुर्लभ है। आपकी अनेक हास्यपूर्ण कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं में बन्द पड़ी हैं। अनेक कहानियों में से तीन कहानियों

का एक संग्रह 'मेरी हजामत' के नाम से प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत संग्रह में 'ब्राह्मण भोजन', 'मेरी हजामत', तथा 'बड़ा दिन' तीनों ही कहानियाँ हास्य की दृष्टि से उत्कृष्ट रचनायें हैं।

अन्नपूर्णानन्दजी के हास्य की सबसे बड़ी विशेषता है—शिष्टता। अश्लीलता उनकी कहानियों के सुन्दर विषयों को दूषित नहीं करती। अश्लील हास्य-साहित्य के लिए विष के समान है जो पढ़ते समय हास्य के स्वाद में पिया तो जा सकता है पर बाद में प्रभाव स्वस्थ न होगा। अश्लीलता के ही समान अस्वाभाविकता तथा अनौचित्य भी हास्य के उत्कर्ष में समान रूप से बाधक होता है। अन्नपूर्णानन्द जी की कहानियों में असङ्गत बातों का प्रयोग प्रायः कहीं पर भी नहीं हुआ है।

उपदेश परिहास का एक बड़ा हृदयग्राही प्रकार है। यह परिहास 'ब्राह्मण भोजन' कहानी में अपनी उत्कृष्ट सीमा तक पहुँच गया है। डेढ़ बजे तक पण्डित जी के न आने पर लेखक का बुरा हाल हो गया। यही हाल घर में बच्चों का था। पूछने पर छोटे भाई बहनें अपना हाल इस प्रकार बताती हैं:—

छोटे भाई ने कहा—"मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मेरे पेट में ज्वालामुखी पर्वत फूट रहा है।"

दूसरे भाई ने कहा—"मुझे ऐसा जान पड़ता है कि पेट में चौरी चौरा काण्ड का अभिनय हो रहा है।"

छोटी बहन ने कहा—"मुझे ऐसा जान पड़ता है कि पेट में भटियारिनों की सभा हो रही है।" *

इसी प्रकार पेट में चूहों का Long jump and High jump का भी वर्णन लेखक मनोरंजक शैली में करता है। †

---

* मेरी हजामत पृ० ६

† ,, ,, ,, ३

घर में विद्यार्थियों का भूख के कारण बुरा हाल हो रहा था। वह कम हास्योत्पादक नहीं है। भूख के कारण भतीजे का धीमे स्वर में सङ्कठा देवी से कष्ट हरने के लिए "नमो संकठा कष्ट हरनी भवानी"* का पाठ हँसी के लिए अग्नि में घृत के समान काम करता है।

'मेरी हजामत' कहानी 'ब्राह्मण भोजन' से अधिक अच्छी है। इसमें हास्य का निखरा हुआ रूप हमें मिलता है। सैलून में थक जाने पर जब लेखक सूट बूट धारी नाई से ही पूछते हैं "आप बता सकते हैं कि इस दूकान का मालिक कहाँ मर गया" और इसका उत्तर सुनकर हमारी हँसी का रुकना असम्भव सा हो जाता है। (पृष्ठ ५९)

'बड़ा दिन' कहानी हास्य रस के लेखकों के लिए एक अनुकरणीय कहानी है। अर्दली से पता चलने पर "कि गर्म पानी के टब से निकलते समय साहब फिसल कर ठण्डे पानी के टब में गिर पड़े और तब से शूहार्न फेंक कर मार देते हैं"× जो जी हुजूरों का हाल हुआ वह हमारी हँसी को उत्तेजित कर देता है।

'मेरी हजामत' के प्रकाशन काल तक कहानी साहित्य के प्रति हास्य की जागृति घनीभूत हो चुकी थी। इस समय तक प्रहसन, कविता तथा निबन्ध—सभी में हास्य का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हो चुका था। साहित्य के अन्य अङ्गों को देखते हुए यह बात खटकती अवश्य है कि कहानी साहित्य ही हास्य की दृष्टि से पिछड़ा रहा है।

इस समय अनेक कवियों का भी ध्यान इधर आकृष्ट हुआ।

---

* मेरी हजामत पृष्ठ १०

× 'बड़ा दिन'—मेरी हजामत पृ० ८३

इन कवियों में चोंच जी तथा 'बेढब' बनारसी जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'चोंच' जी तथा बेढब जी का हास्य केवल हास्य के लिए है। ऐसा जान पड़ता है कि वे अपने देश की दुर्दशा, सामाजिक कुरीतियों तथा धार्मिक निर्बलताओं की ओर से विमुख रहे हैं। वे जनता का मनोरंजन करना ही अपना ध्येय समझते हैं। मनोरंजन तथा हास्य के उद्रेक के लिए लेखकों ने सभी साधनों का प्रयोग किया है। इस बरबस प्रयत्न में यत्र तत्र अश्लील हास्य की भी सृष्टि हो गयी है। इतना तो निश्चित है कि 'चोंच' तथा 'बेढब' के हास्य में हँसाने की शक्ति अवश्य है।

'चोंच' जी की हास्य-रस की कुछ कहानियों का संग्रह 'छड़ी बनाम सोंटा' नामक पुस्तक में हुआ है। संग्रह की पहली कहानी के नाम पर इसका नामकरण हुआ है। इन कहानियों में लेखक स्वप्न की देखी हुई बातों का वर्णन करता है। प्रथम कहानी में लेखक आधुनिक फैशन तथा उसके प्रभाव पर व्यङ्ग करता है और अनुमान करता है कि वह समय दूर नहीं है जब श्रीमती जी पूछेंगी "डियर खाना तैयार है?" और श्रीमान् जी उत्तर देंगे "हाँ, श्रीमती जी आज्ञा हो तो परोसूं।" *

इस कहानी में अन्य स्वप्नगत बातों का वर्णन हास्य प्रधान शैली में किया है। 'मेरा घर ही प्रदर्शनी' कहानी में लेखक की पत्नी और उसका साला गौराङ्ग दिन भर प्रदर्शनी चलने की बात सोच कर षड़यन्त्र करते हैं और अन्त में जब गौराङ्ग लेखक से प्रार्थना करता है तो वह कहता है :—

"देखो, गौराङ्ग! मेरी प्रदर्शनी कितनी अच्छी है......दिन भर में पन्द्रह बार पन्द्रह तरह की साड़ियाँ बदल बदल कर जब

---

* छड़ी बनाम सोंटा पृष्ठ ७

तुम्हारी दीदी मेरे पास से निकलती हैं तो मालूम पड़ता है कि बनारसी और अहमदाबादी दूकानों के स्टाल लगे हैं।······लड़के जब मिठाई देने पर भी······लड़ते हुए शोरगुल करने लगते हैं तो मालूम होता है कि मुशायरा हो रहा है।"*

इसी प्रकार चोंच जी अपनी 'गृह प्रदर्शनी' में बुड्ढों के खाँसने को लाउडस्पीकर बताते हुए हास्य उत्पादित करते हैं।

जहाँ हमें 'चोंच' जी की कहानियों में हास्य की प्रधानता मिलती है वहीं पर कहीं कहीं उनका हास्य निर्जीव सा प्रतीत होता है। उसमें हृदय का सहयोग नहीं दिखायी देता। चोंच जी की हास्यरस की कहानियाँ उच्चकोटि की नहीं हैं। यद्यपि उनके सम्मुख अन्नपूर्णानन्द जी तथा बदरीनाथ भट्ट इत्यादि द्वारा स्थापित हास्य का आदर्श था तथापि कहानी साहित्य में उनका हास्य उत्कृष्ट तथा सराहनीय न हो सका।

साप्ताहिक तथा मासिक पत्रों में प्रकाशित अनेक कहानियों को छोड़कर 'बेढब' जी की हास्यपूर्ण कहानियों के दो संग्रह—'मसूरी वाली' तथा 'बनारसी एक्का'—प्रसिद्ध हैं। 'बनारसी एक्का' तो साहित्य पथ के पथिकों को पर्याप्त समय से हास्यानन्द देता चला आ रहा है।

इन दोनों संग्रहों की कहानियों में स्वाभाविकता पर्याप्त मात्रा में मिलती है। इनमें अत्युक्ति तथा अतिरञ्जना को उतनी प्रधानता नहीं दी गयी जितनी हमें प्रायः अन्य साधारण कहानियों में मिलती है। 'चिकित्सा के चक्कर' वाले डाक्टर, 'खुर्रम खाँ जिन' वाले अध्यापक, हमें नित्यप्रति ही समाज में दिखायी पड़ते हैं।

'बेढब' जी ने हास्य का उद्रेक पात्रों के अपकर्ष तथा चरित्र-

---

* छड़ी बनाम सोंटा पृष्ठ १०

चित्रण के सहारे किया है। घटनाओं द्वारा भी हास्य का उद्रेक किया गया है। उदाहरणार्थ 'सिनेमा की सैर'। 'डिपुटी इन्स्पेक्टर' कहानी में आजकल के नवयुवक, जिन्होंने अपनी सारी गृहस्थी को धूल में मिलाकर डिग्री प्राप्त करने के पश्चात् नौकरी के लिए भटकने में समय गँवाया है, व्यङ्गबाण के लक्ष्य बनाये गये हैं।

'बनारसी एक्का' का परिचय लेखक ने देखिए कितनी हास्यात्मक शैली में दिया है:—

"कुछ चीजें परमात्मा बनाता है और कुछ, जब काम की अधिकता हो जाती है तब ठेके पर भी बनवा लेता है"। * बनारसी घोड़े के दुबले पतले शरीर का वर्णन पठनीय है:—"मोटाई इन वीर तुरंगों की ऐसी होती है कि आश्चर्य होता है कि इनकी कमर से कवि और शायर अपनी नायिकाओं की कमर की उपमा न देकर इधर उधर भटकते क्यों रहे हैं ? इनका सारा शरीर ऐसा लपकता है जैसे अंग्रेजी क़ानून···। +

हास्य की दृष्टि से कहानी पूर्ण रूप से सफल है। इस कहानी में प्रयुक्त उपमायें तक हास्योत्पादन में सहायक होती हैं। उदाहरणार्थ घोड़े के रुक रुक चलने की उपमा 'नयी दुलहिन से', चलते चलते अड़ जाने की उपमा 'दरोग़ा जी के अड़ने से', मार खाने में धैर्यवान् घोड़ों की उपमा 'भारत वासियों से', दी गयी है।×

इसी कहानी में हास्य का एक सुन्दर उदाहरण और देखिए:—

"जिस समय ऐसे दो तीन एक्के साथ दौड़ने लगते हैं उस समय बीमा कम्पनियों की उपयोगिता सूझने लगती है ," ×

---

* बनारसी एक्का पृष्ठ १

+ ,, ,, ,, ३

× बनारसी एक्का पृ॰ ७

'बेढब' जी के हास्य में कहीं कहीं पर वीभत्सता का भी रङ्ग आ गया है और कुछ कहानियों में, यद्यपि वे हास्य की ही दृष्टि से लिखी गयी हैं, हास्य का अभाव है। ऐसी कहानियों में 'चप्पल की कहानी' तथा 'प्रेम की पहली चोट' उल्लेखनीय हैं। 'मसूरी वाली' तथा 'शीर्षासन' हास्य की दृष्टि से सराहनीय हैं।

मनोरंजन की दृष्टि से 'बेढबजी' की कहानियाँ 'चोंच' जी की कहानियों से अच्छी अवश्य हैं पर जब हम उन्हें हास्य की सुन्दरता की कसौटी पर कसते हैं तो वे हमें उस कोटि की नहीं प्रतीत होतीं जिस कोटि के अन्तर्गत श्री अन्नपूर्णानन्द जी की कहानियाँ आती हैं।

श्री भूपनारायण दीक्षित तथा भगवतीचरण वर्मा का भी हास्य रस के लिखने में हाथ है अतः ये उपेक्षणीय नहीं कहे जा सकते।

दीक्षितजी ने बालकों के लिए अनेक पुस्तकें तथा कहानियाँ लिखी हैं। इन कहानियों में बालकों के हँसाने की एक अनिद्य शक्ति है। किन्तु इन कहानियों का हास्य अन्य अवस्था वाले मनुष्यों के उपयुक्त नहीं है। 'गधे की कहानी', 'दिलावर सियार' तथा 'नटखट पाँड़े' आदि हास्यपूर्ण पुस्तकें आपने बालकों ही के लिए लिखी हैं। दीक्षित जी द्वारा सृजित हास्य बाल साहित्य के लिए एक नवीनता है। आप बाल मनोविज्ञान (Child Psychology) के कुशल ज्ञाता हैं और वास्तव में यह हास्य बालकों को हर प्रकार हँसा सकने में समर्थ है।

श्री भगवतीचरण वर्मा की कहानियों के दो तीन संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। वर्मा जी कहानी साहित्य के अग्रगण्य लेखकों में से एक हैं। आपकी हास्यात्मक शैली भी प्रशंसनीय है।

दो वर्ष पूर्व आपकी कहानियों का एक संग्रह 'दो बाँके' का प्रकाशन हुआ है। इस संग्रह में 'रेल में' 'अनशन' 'लाला तिकड़मी लाल' तथा 'दो बाँके' कहानियाँ आद्योपान्त हास्यपूर्ण हैं। उपर्युक्त सभी कहानियों में एक ही कोटि का उत्कृष्ट हास्य मिलता है। 'लाला तिकड़मी लाल' कहानी में आज कल के पुरस्कारदाताओं पर व्यङ्ग किया गया है। इसमें नायक तिकड़मीलाल के चरित्र-चित्रण द्वारा हास्य का उद्रेक किया गया है। 'रेल में' केवल हास्य-रस की दृष्टि से एक नयी कलापूर्ण कृति ही नहीं है वरन् कहानी साहित्य के लिए एक अपूर्व वस्तु है। 'अनशन' के नायक पाण्डेय मस्तराम स्वयं ही हास्य की एक वस्तु हैं फिर उनका कार्य-कलाप तथा चरित्र-चित्रण हँसी को और भी उत्तेजित कर देते हैं। वर्मा जी की हास्य-पूर्ण कहानियां साहित्य के लिए गर्व की वस्तु हैं। उन्हें पढ़ते समय हमे श्री अन्नपूर्णानन्द जी की हास्यात्मक शैली का स्मरण हो आता है। वर्मा जी स्वयं हास्यप्रिय साहित्यिक हैं और इसी गुण की स्पष्ट छाप उनके साहित्य पर भी पड़ी है।

निराला जी गम्भीर साहित्य के रचयिता हैं फिर भी उनकी कहानियों में हमें यत्र तत्र पर्याप्त मात्रा में हँसने के अवसर मिलते हैं। 'सुकुल की बीबी' कहानी में हास्य के अनेक स्थल मिलते हैं। परीक्षा के निकट लेखक की क्या दशा हो जाती थी, हास्य की दृष्टि से पठनीय है।

"किताब उठाने पर और भय होता था, रख देने पर दूने दबाव से फेल हो जाने वाली चिन्ता।......अन्त में निश्चय किया, प्रवेशिका के द्वार तक जाऊँगा, धक्का न मारूँगा, सभ्य लड़के की भाँति लौट आऊँगा।" परीक्षा के पश्चात् फिर, "मेरे अविचल कण्ठ से यह सुनकर कि सूबे में पहला स्थान मेरा होगा, अगर

ईमानदारी से पर्चे देखे गये...। पर ज्यों ज्यों फल के दिन निकट होते आते, मेरी आत्मा वल्लरी सूखती गयी।" *

'चतुरी चमार' कहानी व्यङ्गात्मक हास्य की दृष्टि से आदर्श रूप में मानी जा सकती है। इसी कहानी में चतुरी चमार के लड़के अर्जुनवा के साथ चिरञ्जीव का वार्तालाप पाठकों को सदैव हँसाता रहेगा।

निराला जी की हास्यपूर्ण कहानियाँ 'मतवाला' में प्रायः निकलती रहती थीं। उनका हास्य कुछ गाम्भीर्ययुक्त होता है फिर भी वे एक सफल हास्य लेखक हैं।

'स्वप्नों के चित्र' नाम से श्री रामनरेश त्रिपाठी की कुछ हास्यपूर्ण कहानियों का एक संग्रह प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह की कहानियाँ 'दिमागी ऐयाशी,' 'नख शिख', 'नायिका भेद' 'कवियों की कौंसिल' इत्यादि हैं। सैकड़ों वर्षों से शृङ्गारी कविता ने हिन्दुओं में आलस्य, बेकारी, कायरता, कुरुचि तथा चरित्र-हीनता का विष फैला रक्खा है। पुराने शृङ्गारी कवियों ने जो कुछ कहा है, वह कला की दृष्टि से चाहे जैसा उत्कृष्ट हो पर उपयोगिता की दृष्टि से वह मूल्यहीन है तथा समय के अनुकूल नहीं है। इसी विचार को मस्तिष्क में रख कर त्रिपाठी जी ने इन कहानियों में कवियों पर व्यङ्ग किये हैं। लेखक के ये व्यंग सफल तथा सुरुचिपूर्ण हैं। हँसाने का यह सफल प्रयत्न है। 'कवियों की कौंसिल' कहानी में कवि-समुदाय यह निश्चय करता है कि देश का प्रबन्ध कवियों के हाथों में हो क्योंकि वे अपनी नायिका के चन्द्रमुख के प्रभाव से इलेक्ट्रिक का खर्चा बचा सकते हैं, अकाल-पीड़ित स्थान पर नायिकाओं के आँसू से जल की कमी पूरी कर

* मुकुल की बीबी पृ० १६

सकते हैं। इसी प्रकार के अनेक हास्यपूर्ण प्रस्तावों का इस कहानी में वर्णन है।

त्रिपाठी जी का हास्य इतना सफल है कि पाठक अथवा श्रोता बिना हँसे रह ही नहीं सकता। इनके व्यंग मार्मिक हैं तथा हास्य के उद्रेक में सहायक प्रतीत होते हैं।

इस समय तक हिन्दी में हास्य तथा व्यंग साहित्य की ओर लेखकों का ध्यान पर्याप्त मात्रा में आकर्षित हुआ है परन्तु 'गप्प' की ओर से प्रायः सभी विमुख रहे हैं। 'गप्प' लिखना एक असाधारण कला है। इसका मुख्य आधार कल्पना है किन्तु सभी गप्पों में कल्पना का ही प्राधान्य होना आवश्यक नहीं है। इसमें यथार्थ की ऐसी तगड़ी पृष्ठभूमि होती है कि गप्प मारनेवालों पर कभी सन्देह भी नहीं किया जा सकता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में श्री अमृतलाल नागर इस दिशा में अग्रदूत हैं। नागर जी की गप्पों में हास्य का सुरक्षित हास्य रहता है। नवाबों और उनकी सभ्यता को लेकर हिन्दी में पर्याप्त हास्यात्मक गद्य का सृजन किया गया है किन्तु नवाब तथा उनके मुनासिब यथार्थ के इतने निकट कभी नहीं लाये गये जितना अब और यहाँ पर।

'नवाबी मसनद' में पीरू, रमजानी, कादिरखाँ आदि सभी गप्प हाँकने में कुशल दिखायी देते हैं। 'चोरों का हंगामा' में कादिर मियाँ 'टिकिया चोरों' के प्रति घृणा प्रकट करते हुये हामिद की उदारता का परिचय किस प्रकार बढ़ा चढ़ा कर देते हैं।

इमामबाड़े की रोशनी में पीरू पहलवान की गप्पें तो सीमा का उल्लंघन कर गयी हैं:—"अरे उस्ताद उस दिन लाट साहब को अपनी आँखों से देखा। मगर भाई हुजूर की बदौलत यह रुतबा हासिल हुआ कि बड़े बड़े डिप्टी कलक्टर हैरत भरी नजरों से हमारी तरफ देख रहे थे। लाट साहब हुजूर से हँस हँस के

बातें कर रहे थे फिर अपनी मेम साहब से कहा, "यह हमारे लंगोटिया यार हैं।"·········लाट साहब उसके बाद सरकार के गले में हाथ डालते हुए बोले "अमां नवाब साहब तुम तो कभी हमारी कोठी में आते भी नहीं·········।" पृष्ठ २६.

'सूरज में छेद हो गया,' 'हवाई जहाज की दुम' में अनेक गप्पें भरी पड़ी हैं जिन्हें पढ़ कर हँसी के फुहारे छूट उठते हैं। इसी प्रकार बेसिर पैर के हास्योत्पादक गप्पें 'घसियारे से हाकिम साहब' तथा 'कालेज के लड़के' में मिलती हैं।

नागर जी की दूसरी हास्यपूर्ण कहानियों का संग्रह 'तुलाराम शास्त्री' है जिसमें चरित्रचित्रण द्वारा हास्य का विधान किया गया है।

श्री अजीमबेग चग़ताई, पढ़ीस जी तथा श्रीहरीशङ्कर शर्मा ने भी कुछ हास्यपूर्ण कहानियों की रचना की है। उनके हास्य सुन्दर तथा सुरुचिपूर्ण हैं।

जीवनचरित्र में हास्य

जीवनचरित्र में हास्य

आधुनिक हिन्दी-साहित्य के पूर्वार्ध काल में निबन्ध, कविता तथा नाटकों का ही प्राधान्य रहा है। वह युग साहित्यिक जागृति का समय था। जहाँ अन्य क्षेत्रों में आशातीत उन्नति हुई उसके विपरीत जीवनचरित्र तथा कहानी इत्यादि का पूर्णतया अभाव रहा। जीवनचरित्र यद्यपि इस समय तक कुछ लिखे जा चुके थे परन्तु वे वीरों अथवा भक्तों की गाथामात्र थे। आजकल जिस प्रकार के जीवनचरित्र लिखे जा रहे थे वे उस समय के लिए नवीन थे। 'कुल्ली भाट' तथा 'लतखोरीलाल' उस समय के लिए कल्पना की वस्तुएँ थीं। इसके बाद द्विवेदी-युग का उत्थान होता है। इस युग में गद्य की विशेष रूप से उन्नति हुई तथा हास्य का प्रयोग अधिक हुआ। श्री जी० पी० श्रीवास्तव ने सर्व प्रथम जीवनचरित्र में हास्य का प्रयोग किया। एक विशेष पात्र को लेकर हास्यात्मक शैली में उसका चरित्र-चित्रण किया है। 'लतखोरीलाल' एक ऐसी ही पुस्तक है जिसमें घटनाचक्र तथा चरित्रचित्रण द्वारा हास्य का विधान किया गया है परन्तु घटनाएँ इतनी अतिरंजित हैं कि वे कल्पना की सीमा का भी उल्लंघन कर जाती हैं। इसमें यद्यपि हास्य के उदाहरण आद्योपान्त हैं तथापि वह उत्कृष्ट हास्य नहीं है। 'लतखोरीलाल' की

जेंटिलमैनी की धूम, गवने के मज़े, ससुराल की बहार तथा परदेश की लीला पढ़ते पढ़ते पेट में बल पड़ जाते हैं। इस पुस्तक में अति-हसित, अप-हसित हास्य सर्वत्र मिलते हैं किन्तु स्मित हास्य का अभाव है। अनेक स्थलों में अशिष्ट तथा अश्लील हास्य भी मिलता है उदाहरणार्थ वृद्ध बाबा जी का लतखोरीलाल के साथ अश्लील व्यवहार का वर्णन * तथा नायक का वेश्या के यहाँ जाना। ×

श्रीवास्तव जी बाद अनेक साहित्यिकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। श्री अन्नपूर्णानन्द जी इनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'महाकवि चच्चा' में अन्नपूर्णानन्द जी हास्य के विधान में अत्यन्त सफल हुए हैं। इसमें सर्वत्र सुष्ठु हास्य का प्रयोग हुआ है। चच्चा जी का चरित्रचित्रण इतनी सुन्दरता से किया गया है कि वह पाठकों को आद्योपान्त हँसाता रहता है। महाकवि चच्चा का जीवनचरित्र स्वयम् ही हास्य की सामग्री है। एक बार चच्चा जी किसी गुरु के यहाँ कविता सीखने के लिए गये। गुरु के यहाँ बारह कनस्तर रक्खे हुए थे जिन पर नायिका भेद, अलङ्कार इत्यादि लिखा था। चच्चा जी गुरुदेव का चरणस्पर्श करके बैठ गये। गुरु जी ने कविता में ही पूछा:—

रे बालक नादान कहाँ सोये से जागा।
किस माता की गोद किये सूनी उठ भागा॥ +

चच्चा ने उत्तर दिया—मैं बालक नहीं हूँ, मेरी उम्र १८ वर्ष की है और शादी हो चुकी है। इस पर गुदेरुव ने पुनः पूछा:—

---

* लतखोरीलाल पृ० २००

× ,, ,, ,, ७३

+ महाकवि चच्चा पृष्ठ ३६

कहिये कृपानिधान कहाँ से कैसे आये।
किस विरहिन की सेज किये सूनी उठि धाये ॥ *

इस पर चच्चा जी ने समझाकर कहा, "न मैंने गोद और न सेज हो सूनी की है वरन् आपके पास कविता सीखने आया हूँ। गुरु जी तथा उनके नौकर का वर्णन किसी भी प्रकार कम हास्य-प्रद नहीं है।+ इसी पुस्तक में चच्चा की जीवनी का वर्णन करते हुए अपने ऊपर घटित घटनाओं का भी वर्णन बिलवासी मिश्र करने लगते हैं। वे एक बार अपने मित्र के भाई से मिलने गये जिसका वर्णन इस प्रकार है:—

......"मैंने नमस्कार किया और कहा मेरा नाम बिलवासी है। उसने जवाब दिया, "Good morning Mr. Bill Boss लेकिन आप हैं कौन? Your face is rather funny." मैं कहने हो जा रहा था कि मेरा नाम बिलवासी है Bill Boss नहीं और अगर मेरा चेहरा funny है तो आपकी बला से पर उसने मुझे रोक कर फिर कहा Why did you disturb me at my toilet, आप जाइए मैं आपको एक कौड़ी न दूँगा On principle I am opposed to begging. ×

इस पुस्तक में लेखक ने व्यंगात्मक हास्य का भी कहीं-कहीं प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ "सज्जनो! अँग्रेज अवतारी जीव हैं। हम पशु थे उन्होंने मनुष्य बनाया। हममें बड़ों के पैर छूने की गन्दी आदत थी. उन्होंने (Good morning) गुड मार्निङ्ग करना सिखाया। हममें उपकारों के लिए आजीवन कृतज्ञ रहने की बुरी आदत थी उन्होंने हमें 'थैङ्क यू' कहना सिखाया...।" (पृष्ठ ४३)

* महाकवि चच्चा पृष्ठ ३६
\+ " " " ३७
× " " " ८६-६०.

अन्नपूर्णानन्द जी की यह पुस्तक हास्य रस की बहुमूल्य निधि है। वे सफल तथा उत्कृष्ट हास्य लेखकों में गण्यमान् हैं।

'महाकवि चच्चा' के प्रकाशन के प्रायः पाँच या छः वर्ष पश्चात् निरालाजी लिखित 'कुल्ली भाट' का प्रकाशन हुआ। इस पुस्तक में हास्य का प्रयोग अत्यन्त सुन्दर हुआ है। हास्य की दृष्टि से यह कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि लेखक अपने प्रयास में सफल हुआ है। स्वाभाविक हास्य इस पुस्तक की विशेषता है। घटनाचक्र तथा चरित्रचित्रण के द्वारा भी इसमें हास्य का उद्रेक किया गया है। कुछ स्थल तो ऐसे हैं जहाँ पर बिना हँसे रहा ही नहीं जा सकता। उदाहरणार्थ "सबेरे जब जगा तब घर में बड़ी चहल पहल थी, साले साहब रो रहे थे। .... ससुरजी खुड्डी में गिर गये थे, नौकर नहला रहा था। घर में तीन जोड़े बैल घुस आये थे। श्रीमतीजी लाठी लेकर हाँकने गयी थीं, एक के ऐसी जमायी कि उसकी एक सींग टूट गयी··· महरी पानी भरने गयी थी, रस्सी टूट जाने के कारण पीतल का घड़ा कुयें में चला गया था। (कुल्ली भाट, पृ० ५२)

इसी प्रकार जब लेखक तथा उसकी सास का कुल्ली विषयक संवाद सुनते हैं तो हँसी के फुहारे छूट उठते हैं। (पृ० २१,२२)

'बिल्लेसुर बकरिहा' में लेखक ने सफल तथा शिष्ट हास्य की रचना की है। इस पुस्तक में चरित्रचित्रण द्वारा हास्य का उद्रेक किया गया है। सफल हास्य का एक उदाहरण इस प्रकार है:—

"······बकरियों को भगाने का लोभ लड़कों से न रोका गया। सलाह करके कुछ बाहर तके रहे, कुछ बिल्लेसुर के पास गये। एक ने कहा, "काका आओ कुछ खेला जाय।" बिल्लेसुर मुस्कराये, कहा, "अपने बाप को बुला लाओ तुम हमारे साथ क्या खेलोगे?" दूसरे ने कहा, "अच्छा काका न खेलो, पर-

देस गये थे वहाँ के ही कुछ हाल सुनाओ।" बिल्लेसुर ने कहा, "बिना अपने मरे कोई सरग नहीं देखता।" एक तीसरे ने कहा, "यहाँ हम लोग हैं भेड़िये का डर नहीं, वह ऊँचे हार में रहता है।" बिल्लेसुर ने कहा "इधर भी आता है लेकिन आदमी का भेष बदल कर।" (बिल्लेसुर बकरिहा, पृष्ठ ३७)

'मेरी असफलतायें' के लेखक श्री गुलाबराय एम० ए० का भी उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है। इस पुस्तक में लेखक ने अपनी भूलों तथा असफलताओं के उल्लेख के द्वारा हास्य का उद्रेक किया है। इस पुस्तक में हास्य का उत्कर्ष अपकर्ष के आधार पर हुआ है।

सन् १९३२ ई० में 'हंस' का 'आत्मकथा' अङ्क प्रकाशित हुआ था। प्रायः तेरह साहित्यिकों की संक्षिप्त आत्मकथाओं का यह संग्रह है। हास्य की दृष्टि से सर्वश्री अन्नपूर्णानन्द, पं० बदरीनाथ भट्ट तथा कौशिकजी की जीवनी सफल हैं।

निबन्ध

तथा

आलोचना-साहित्य में हास्य

निबन्ध तथा आलोचना-साहित्य में हास्य

भारतेन्दु युग हिन्दी गद्य तथा पद्य की उन्नति का युग था। इस युग में साहित्य की जितनी तीव्र गति से उन्नति हुई वह साहित्य के इतिहास में सदैव उल्लेखनीय रहेगा। इसी युग में पत्र-साहित्य की भी प्रशंसनीय उन्नति हुई और फलतः पत्र साहित्य की उन्नति का प्रभाव निबंध साहित्य पर बिना पड़े न रहा। इस युग के पूर्वार्ध में निबन्ध का आकार तथा प्रकार बहुत कुछ अस्थिर रहा। यह समय निबन्ध के शैशवावस्था का था। साहित्य के अन्य अंगों के हेतु दूसरे साहित्यों के आदर्श स्थापित थे, उनके सहारे कविता, नाटक, उपन्यास इत्यादि की रचना की जा रही थी परन्तु निबन्ध का व्यक्तित्व ही हमारे साहित्य के लिए एक नवीनता थी। भारतेन्दु जी का 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' तथा राजा शिवप्रसाद सितारे-हिन्द का 'राजा भोज का सपना' और बालमुकुन्द गुप्त का 'एक दुराशा' तथा 'आशीर्वाद' हमारे साहित्य में एक वैचित्र्य का समावेश कर रहे थे। राधाचरण गोस्वामी की 'यमपुरी की यात्रा' और प्रतापनारायण मिश्र का 'आप' निबन्ध-साहित्य के लिए एक घटना है।

भारतेन्दु-युग के लेखकों की उदार प्रकृति और स्वाधीन चेतना की स्पष्ट छाप उनके निबंधों पर बिना अंकित हुए न रह

सकी। उस समय के सजीव लेखकों ने निबंध को एक रोचक और उपयोगी माध्यम बनाया था। समाज, देश, धर्म, नीति, सम्राट सभी के प्रति असन्तोष तथा विरोध प्रदर्शन करने का एक मात्र साधन उनके पास व्यंगात्मक निबंध था। उस युग के निबन्धकारों का व्यंगास्त्र मुल्ला, पंडित, तीर्थव्रत इत्यादि पर समान रूप से चलता था। अभाव पूर्ण और सुधार के योग्य वस्तु देखकर वे अपना व्यंगास्त्र छोड़ देते थे।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के निबन्ध 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' में व्यंग तथा हास्य का अच्छा परिष्कृत तथा निखरा स्वरूप उपलब्ध होता है। उस समय की आवश्यकतानुसार लेखक व्यंग-पूर्ण निबंध का आरम्भ गम्भीर शैली में करते थे, और धीरे-धीरे वही गम्भीर शैली विकसित होती हुई लक्ष्य पर प्रकट रूप से प्रहार करती थी। भारतेन्दु जी भी इसी शैली के लेखक थे। निबंध के आरम्भ में तो गम्भीर शैली का आभास है परन्तु उसके बाद हास्य रस के फुहारे छूट पड़ते हैं:—

"देखो संसार-सागर में एक दिन सब संसार अवश्य मग्न हो जायगा। कालवश शशि सूर्य्य भी सब नष्ट हो जायँगे।"

इस प्रकार गम्भीर शैली को ग्रहण करके निबंध में हास्य का समावेश किस प्रकार करते हैं:—

"फिर भी पड़े पड़े पुस्तक रचने की सूझी। परन्तु इस विचार में बड़े काँटे निकले। क्योंकि बनाने की देर न होगी कीट क्रिटिक काट कर आधी से अधिक निगल जायँगे।"

"इस प्रकार की शैली का सृजन करना परन्तु उसे ऊपर से गम्भीर बनाये रखना उतना ही कठिन है जितना दूसरों को हँसाते हुए स्वयं मुँह बन्द किए रखना।" *

* भारतेन्दु-युग पृष्ठ ६८।

भारतेन्दु जी और उनके समकालीन साहित्यिक दोष निहारने में चतुर थे। विद्यालय, अनाथालय, इत्यादि संस्थाओं के हेतु चन्दा माँग माँग कर स्वयम् अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले सज्जन अथवा दुर्जन भी भारतेन्दु जी की निगाहों में चढ़ गये थे तभी तो उन्होंने उन पर इस प्रकार व्यंगबाण छोड़ा है:—

"पाठशाला बनाने का विचार करके जब थैली में हाथ डाला तो केवल ग्यारह गाड़ी ही मोहरें निकलीं। इष्ट मित्रों से सहायता ली तो इतना धन इकट्ठा हो गया कि ईंटों के ठौर पर मोहर चुनवा देने पर भी दस पाँच रेल रुपये बच रहते।"

जब धन की इतनी प्रचुरता तब विद्यालय बनने में ही कौन सी बाधा। विद्यालय के उद्घाटन का भी अवसर आया। उद्घाटन-भाषण भी व्यंग की दृष्टि से पठनीय है। विद्यालय की नीतिशास्त्र के अध्यापक पं० शीत दावानल नीतिदर्पण की प्रशंसा करते हुये कहते हैं:—

"इनसे नीति तो बहुत से महात्माओं ने पढ़ी थी परन्तु रावण, दुर्योधन………इत्यादि इनके मुख्य शिष्य हैं और अब भी कोई कठिन काम आकर पड़ता है तो अंग्रेजी न्यायकर्त्ता भी इनकी अनुमति लेकर आगे बढ़ते हैं।"

प्रसंग और अवसर मिलते ही भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी व्यंग लक्ष्य का उपहास करने लगते थे। पुलिस, कचेहरी, न्यायालय, विद्यालय सभी उनके व्यंग क्षेत्र के अंतर्गत सीमित थे।

भारतेन्दु बाबू की व्यंग तथा हास्यपूर्ण रचनाओं में शिक्षा का आधिक्य नहीं रहता था परन्तु राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द की रचनाओं में शिक्षा अधिक है और हास्य की कमी है। वास्तव में भारतेन्दु जी एक सफल व्यंग और उपहासकार थे। उनके समकालीनों में इतना सफल उपहासकार और कोई नहीं हुआ।

'स्वर्ग में केशवचन्द्र सेन और स्वामी दयानन्द' निबंध में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने 'धर्मों की विभिन्नता' तथा 'स्वर्गों की कल्पना' का उपहास किया है। यह निबंध उस समय की हास्य-रस पूर्ण शैली तथा भावना का एक सुन्दर उदाहरण है। सामाजिक कुरीतियों पर प्रकाश डालने के हेतु भारतेन्दु जी ने कोरी कल्पनाओं का आश्रय ग्रहण कर एक अच्छी कथा का निर्माण कर डाला है। प्रेस स्वाधीनता के अभाव में व्यंग के सिवाय लेखकों के पास और साधन ही क्या था जिसके द्वारा वे असन्तोष प्रकट करके जनता को उसकी ओर आकृष्ट करते।

राजनैतिक दमन, सामाजिक दुराचार, इत्यादि पर श्रीराधाचरण गोस्वामी ने भी अपने व्यंग शब्दों को साधा था। यद्यपि 'यमलोक की यात्रा' में स्वप्न में देखी हुई बातों का ही अधिक विवरण उपलब्ध होता है तथापि उसका लक्ष्य राजनैतिक तथा सामाजिक दोष का चित्रण मात्र था। भारतेन्दु बाबू के 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न' में गम्भीर शैली का आधार है परन्तु राधाचरण गोस्वामी की इस यात्रा में आद्योपान्त हास्यपूर्ण शैली का आभास मिलता रहता है। गोस्वामी जी के व्यंगात्मक हास्य पर पाठक केवल मुस्करा कर ही न रह जायगा वरन् खिलखिला भी पड़ेगा।

इस युग के निबन्ध-लेखकों में श्री प्रतापनारायण मिश्र का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मिश्रजी अत्यन्त विनोद-प्रिय तथा सजीव व्यक्ति थे। उनकी विनोद-शीलता और हास्यप्रियता उन्हीं तक सीमित नहीं रही। उसकी स्पष्ट छाप उनके साहित्य के सभी अंगों पर समान रूप से पड़ी। उनका निबन्ध साहित्य भी हास्य से अछूता न रहा। 'ब्राह्मण' इसका प्रमाण है। मिश्रजी हास्यप्रिय तो यहाँ तक थे कि सम्पा-

दकीय स्तम्भ भी यदा कदा हास्य से ओतप्रोत रहता था। उनके निबन्धों में मनोरंजन का बाहुल्य है। मिश्रजी के पास हास्योद्रेक करने के दो साधन थे—१. श्लेष तथा २. कहावतें। इसके अतिरिक्त दो अद्भुत बातों को एक साथ अप्रत्याशित भाव से रखने के कारण भी उत्कृष्ट हास्य का सृजन करते रहते थे। मिश्रजी के निबंधों में सर्वत्र शिष्ट तथा परिष्कृत हास्य उपलब्ध होता है।

आपके व्यङ्ग विशेष रूप से तीव्र तथा प्रभावशाली होते थे। व्यङ्ग के विषय में लेखकों का मत है कि भाषा के बीच वह 'कुनैन गोली पर शक्कर' सा है पर शकर इतनी अधिक न होने पाती थी कि उसकी कड़वाहट छिप जाय। शकर की आवश्यकता 'प्रेस ऐक्ट' के बन्धनों के कारण पड़ती थी। आपके हास्यपूर्ण निबंधों में 'कलि कोप', 'मुक्ति के भागी', तथा 'होली है', विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

श्रीबालकृष्ण भट्ट में भी अपने युग की विशेषता विद्यमान थी। इस युग के सभी लेखकों की भाँति श्री बालकृष्ण भट्ट भी हास्य लेखन में अत्यन्त पटु थे। हास्य और व्यङ्ग को हम उस युग की विशेषता ही नहीं वरन् आवश्यकता भी कहें तो अधिक उचित प्रतीत होगा। भट्टजी के निबन्ध 'खटका' में हास्य का रङ्ग देखिए, "अजी जीते जी तो कोई खटके से खाली रहता ही नहीं मरने पर भी फिर जन्म लेने का खटका लगा रहता है।"

श्री बालमुकुन्द गुप्त की कीर्ति का मूलाधार 'शिवशम्भु शर्मा का चिट्ठा' है। ये व्यङ्गपूर्ण निबन्ध भारतेन्दुजी तथा मिश्रजी की परम्परा का अनुकरण करके लिखे गये हैं। भँगेड़ी शिवशम्भु के दिवा स्वप्नों के बहाने गुप्तजी ने विदेशी शासन पर खूब व्यङ्ग कसे हैं। कविसुलभ कल्पना से उनकी व्यङ्ग कथा और भी चम-

त्कृत हो गयी है। गम्भीर से गम्भीर विषय में भी हास्य का समावेश वे किस प्रकार करते थे यह उनके 'एक दुराशा' तथा 'आशीर्वाद' से प्रकट होता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि भारतेन्दु युग निबन्ध साहित्य का शैशव-काल था। इस समय साहित्य के इस अंग में हास्य का प्रयोग अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुका था। अतः भारतेन्दु-युग के पश्चात् निबन्ध में हास्य का सफल प्रयोग करना एक दुष्कर कार्य हो चला था। किन्तु इस युग के पश्चात् द्विवेदी-युग के कुशल लेखकों में श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्री मिश्रबन्धु, श्री कृष्णबिहारी मिश्र, श्री जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, श्री भगवानदीन, श्री पद्मसिंह शर्मा, इत्यादि गण्यमान् लेखक हैं।

द्विवेदी युग के आरम्भ में हिंदी साहित्य के अन्तर्गत वाद-विवाद का आधिक्य रहा। इस प्रकार के वाद-विवाद का मूल कारण था साहित्यिक जागृति। किसी एक विद्वान को कोई विशेष प्रिय कवि रहा तो दूसरे को अन्य। इसी प्रकार रुचि विभिन्नता भी वाद-विवाद का कारण थी। ये वाद-विवाद सम्बन्धी निबंध हास्य तथा व्यङ्गों से युक्त होते थे। 'देव-बिहारी' सम्बन्धी तुलनात्मक निबन्धों में हास्य उद्रेक करने में समर्थ व्यङ्गों का बहुत प्रयोग हुआ।

इसी प्रकार द्विवेदीजी तथा श्री जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी का कालिदास विषयक वाद-विवाद भी व्यङ्गात्मक हास्य से परिपूर्ण है। द्विवेदीजी ने कालिदास की निरंकुशता पर कुछ लेख 'सरस्वती' में लिखे थे। चतुर्वेदी जी की प्रत्यालोचना 'निरंकुशता निदर्शन' के नाम से प्रकाशित हुई। चतुर्वेदी जी ने 'निरंकुशता निदर्शन' में व्यङ्गात्मक हास्य शैली को अपनाया। इस प्रत्यालोचना को पढ़कर सबसे पहले हमारे हृदय में यह भाव उत्पन्न होता है

कि यह आलोचना पारस्परिक विवादों के कारण लिखी गई है। साहित्यिक विवादों के कारण इस प्रकार आलोचनाएँ नहीं लिखी जा सकती हैं। चतुर्वेदी जी के व्यङ्ग व्यक्तिगत होने के कारण अत्यन्त तीव्र हैं। उदाहरणार्थ:—

"सरस्वती के स्थायी सम्पादक श्रीयुक्त पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी बारह महीने में अपना स्वास्थ्य सुधार कर फिर साहित्य के अखाड़े में आये हैं। आते ही आपने घोर तर्जन-गर्जन के साथ कविवर कालिदास पर मुष्टिक-प्रहार किया है। अब कालिदास की खैर, क्योंकि महावीर जी महाराज बेतरह विकट रूप धारण कर हाथ साफ़ कर रहे हैं। 'कविता-कानन-केशरी' का पहले प्रहार में ही अंजर-पंजर ढीला हो गया। आगे क्या होगा राम जाने। जो हो, इस 'केशरी-महावीर-संग्राम' का फल देखने के लिए दर्शकों की उत्कट उत्कण्ठा है।

तथा

"द्विवेदी जी महाराज! मैं भी इसे मानता हूँ। कृपया यह तो बताइये कि आप संस्कृत के घोर पण्डित होकर भी बेचारे व्याकरण का गला क्यों घोंटते हैं। निरङ्कुशता को 'निरंकुशता'……लिखना व्याकरण के विरुद्ध है या नहीं।"

चतुर्वेदी जी की इस प्रत्यालोचना को पढ़ते पढ़ते हमें कुछ स्थल ऐसे उपलब्ध होते हैं जिन्हें पढ़कर हँसी आ जाना स्वाभाविक है। संकीर्ण हृदयवान् दो मनुष्यों की 'तू तू-मैं मैं' देखकर हँसी आ जाना किसी प्रकार अस्वाभाविक नहीं है।

यद्यपि आचार्य शुक्ल जी के निबन्धों के विषय दुरूह तथा नीरस है तथापि उनमें हास्य की छटा यत्र तत्र उपलब्ध हो हो जाती है। शुक्ल जी शुद्ध हास्य तथा व्यङ्ग रचना में अत्यन्त कुशल थे। उदाहरणार्थ:—

"रसखान तो किसी की 'लकुटी अरु कामरिया' पर तीनों पुरों का सिंहासन तक त्यागने को तैयार थे पर देशप्रेम की दुहाई देनेवालों में से कितने अपने किसी थके माँदे भाई के फटे पुराने कपड़ों.........पर रीझकर या कम से कम न खीझ कर बिना मन मैला किये कमरे की फ़र्श भी मैली होने देंगे। मोटे आदमियो, तुम जरा सा दुबले हो जाते—अपने अंदेशे से ही सही—तो न जाने कितनी ठठरियों पर मांस चढ़ जाता।"

शुक्ल जी के कुछ व्यङ्गात्मक उदाहरण और देखिए:—

"भूखे रहने पर सबको पेड़ा अच्छा लगता है। पर चौबे जी भरपेट भोजन के ऊपर भी पेड़े पर हाथ फेरते हैं।" तथा "रुपये के रूप, रस, गंध आदि में कोई आकर्षण नहीं होता पर जिस वेग से मनुष्य उस पर टूटते हैं उस वेग से भौंरे कमल पर और कौए मांस पर भी न टूटते होंगे।"

वर्तमान काल में निबन्ध साहित्य में व्यङ्ग तथा हास्य का प्रयोग करनेवाले साहित्यिकों में डा० पीताम्बरदत्त बर्त्वाल, डा० रामविलास शर्मा, डा० केसरी नारायण शुक्ल, निराला जी, श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', श्री चन्द्रकुँवर बर्त्वाल तथा श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

'दुबे जी की चिट्ठी' के लेखक श्री विश्वम्भर नाथ शर्मा के निबन्धों में शुद्ध हास्य का अच्छा प्रयोग हुआ है। आपकी 'चिट्ठियों' में सामाजिक कुरीतियों पर विशेष रूप से व्यङ्ग कसे गये हैं। कौशिक जी शुद्ध हास्य लिखने में सिद्धहस्त हैं। उनके शुद्ध हास्य का एक उदाहरण देखिए:—

एक चिट्ठी में वह कलेक्टर साहब से अपनी मुलाकात का वर्णन करते हैं। कलेक्टर साहब के कमरे में प्रवेश के पूर्व चपरासी उनके जूते तथा टोपी उतरवा कर रखा लेता है। इस पर

दुबे जी चपरासी के व्यवहार से अवाक् होकर साहब से कहते हैं, "आपके चपरासी ने टोपी जूटा रखा लिया है कोई खटके की बात तो नहीं है।"

साहब बोले, "नहीं, डूबे जी, कोई फिकर का बाट नहीं है। अगर आपका टोपी जूटा चला जायगा तो हम आपको हजार टोपी और हजार जूटे देने सकटा है।" साहब, "डूबे जी", मैं बीच ही में बोल उठा, "साहब न मैं डूबा हूँ और न बहा हूँ। मैं हट्टा कट्टा आपके सामने बैठा हूँ। साहब—"टो आप खिटाब लेगा ?" मैंने सोचकर कहा—"खैर मुझे आप खिटाब दें या न दें मगर लल्ला की महतारी को जरूर कोई खिताब दे दीजिए। उसकी बदौलत मेरा भी नाम चल जायगा। रायबहादुरिन, रायसाहबिन ऐसा ही कोई खिताब दे दीजिए।"

स्त्रियों की अशिक्षा, पर्दा, दहेज प्रथा, कान्यकुब्जों की बारात, जैसे विषयों पर कौशिक जी ने बड़ी ही सुन्दर तथा मार्मिक व्यङ्ग-युक्त चिट्ठियाँ लिखी हैं। सामाजिक तथा राजनीतिक कुरीतियाँ भी कौशिक जी की व्यङ्ग शैली से नहीं बच सकीं।

'चाँद' ने एक बार 'फाँसी अंक' निकाला। 'फाँसी' क्या इतनी आवश्यक वस्तु है जिस पर 'विशेष अंक' निकाला जाय ? इसी प्रश्न ने अनुभव की ओर प्रेरित किया। फलतः अनुभव प्राप्त करने के हेतु लेखक ने फाँसी लगा ही तो ली। लेखक ने अपनी अनुभूति हास्यात्मक शैली में इस प्रकार चित्रित किया है:—

"बच्चों के लिए घर में पड़े झूले की रस्सी का फन्दा बना कर मैंने अपने गले में डाला और उसे धीरे धीरे कसना आरम्भ किया। मुख की चेष्टा देखने के लिए सामने दर्पण रख लिया। पहले तो ऐसा मालूम पड़ा कि श्वासनालिका बन्द होकर दम घुट रहा है।

दर्पण में मुँह देखा तो चित्त प्रसन्न हो उठा, चेहरा कुन्दन की तरह दमक रहा था।······पर वहाँ दुर्भाग्य से लल्ला की महतारी आ गई।·········दौड़कर मेरे हाथ से रस्सी छुड़ा ली और फन्दा खोल दिया। कोई एक मिनट बाद मुझमें पुनः देखने सुनने की शक्ति आई। इस प्रयोग में कोई चार पाँच मिनट लगे होंगे। लल्ला की महतारी ने पूछा, "फाँसी क्यों लगा रहे थे?" मैंने कहा, "कुछ नहीं जरा मजा आ रहा था परन्तु तुमने सारा मजा किरकिरा कर दिया। यदि दस पाँच सेकेण्ड तुम न आतीं तो मैं फाँसी का पूरा आनन्द ले लेता।"

हृदय के किसी भाव की रस की अवस्था तक पहुँचने को कई सीढ़ी होती हैं। इन भिन्न-भिन्न स्तरों पर भावुक हृदय आवश्यकतानुसार ठहरता, भग्न होता और विकल होता हुआ बार बार अग्रसर होता है। स्व अनुभूतियों को अपनी, जिज्ञासाओं को अपनी, विचारों को अपनी आलोचना को वाणी देकर वह चारों ओर से प्रभाव डालनेवाली परिस्थितियों का चित्रण जब अनुभूति की तीव्रता के साथ करता है तब उसमें एक विशेष प्रकार का आकर्षण हुआ करता है। प्रसन्नता का भाव इन्हीं भिन्न स्तरों पर अन्य भावों की तरह अभिव्यक्ति पा सकता है और पाता भी है। किन्तु जो तीव्रतम अनुभूति विषाद की होती है वह प्रसन्नता के भाव में नहीं होती है। इसलिए प्रसन्नता का भाव गहरा वहीं हो पाता है जहाँ विषाद उसके साथ ही मिला हो।

वर्तमान जीवन ही संघर्ष-मय परिस्थितियों में विषाद के साथ प्रसन्नता का भाव अधिक व्यक्त होता जा रहा है। जिस व्यक्ति के जीवन में विषाद जितना ही गहरा पाया जाता है, उसकी रचनाओं में यदि प्रसन्नता का भाव अभिव्यक्त होता है, तो वह प्रायः व्यंग का रूप धारण कर लेता है। व्यंग में लाक्षणिक अर्थों

से कहीं अधिक प्रधानता ध्वन्यार्थों की होती है अतः ऊँची श्रेणी के काव्य के निकट प्रसन्नता का भाव वर्तमान जीवन में व्यंग-मिश्रित होने से ही आ सकता है। 'निराला', 'प्रसाद', प्रेमचन्द तथा बत्वालजी व्यंग के सहारे खास व्यक्ति हैं।

श्रीबत्वालजी समाज तथा व्यक्ति के उस बरसाती झाड़ को जो जीवन में स्वच्छ धारों को दबा देता है, व्यंगमिश्रित हास्य में दूर करने में सिद्धहस्त हैं, एक साधारण सी बात सौगन्ध खाने की है, जिसको कई पहलुओं से देख समझ तथा सोचकर बत्वालजी ने अपने 'सौगन्ध' लेख में सरल से सरल और गहन से गहन एक साथ ही बना दिया है। इस छोटे से विषय को लेकर कितनी सुन्दरता के साथ लेखक ने इसकी व्याख्या किया है, यह देखने की बात है। 'सौगन्ध' शीर्षक लेख के आरम्भ में लिखते हैं:—

"हास्य यदि लोग मेरा विश्वास करते तो मुझे सौगन्ध खाने की ईश्वर की दुहाई देने की, रामजी का नाम लेने की क्या जरूरत थी ? लेकिन क्या करूँ ? मामला यहाँ तक पहुँच गया है कि यदि मैं अपने किसी मित्र को नमस्कार करूँ और सौगन्ध खाऊँ कि नमस्कार करनेवाला सेन्ट-परसेन्ट मैं ही हूँ, तो मेरे मित्र को विश्वास ही न आवे कि मैं उनके आगे अपना शरीर लिए खड़ा हूँ...... .....'ईश्वर क़सम', 'ससुर क़सम', 'बाप क़सम', 'तुम्हारी क़सम', बाइगाड, वग़ैरह क़समें खाना मामूली बात है।"

इस साधारण भूमिका से आरम्भ कर धीरे-धीरे गहराई की ओर ले जाते हुए बत्वालजी कहते हैं—

"अगर सच कहूँ तो मुझे मेरे दोस्तों ने ही बिगाड़ा है। नहीं तो मैं भी और लोगों की तरह रहता था—सौगन्ध कभी-कभी मौक़े पर ही खाया करता था, इन्हीं लोगों ने मुझमें यह लत डाली। और ये लोग किसी का जो न करें वह थोड़ा ही है।

किसी को ये लोग अपने पैसों से सिगरेट ख़रीद ख़रीद कर पीने के लिए देते हैं। वह बेचारा जब पीने के लिए आनाकानी करता है, तो वे लोग चार पाँच मिलकर एक साथ कहते हैं—'तुम्हें हमारी क़सम है जो तुम न पिओ—!' इतने पर भी अगर कोई पीने के लिये राज़ी न हुआ तो वे सबके सब उस बेचारे से 'सत्याग्रह' करने के लिये तैय्यार हो जाते हैं—बेचारा अकेला दोस्त ! वह क्या करे ? उसे पीनी ही पड़ती है। और जब वे नौसिखिये साहब तम्बाकू के इंजन बन जाते हैं, तो फिर दोस्त लोग आराम के साथ फर्स्ट क्लास गद्दों पर लेटकर धूम्रपुरी की सड़कों पर दिन रात घूमते हैं। समाज की साधारण सी बात को छूती हुई बख्शी जी की हँसी राष्ट्रीय समस्या को भी प्रकट में लाती है। ऐसे स्वर पर पहुँचकर वह कहते हैं:—और सचमुच क़समों से क्या नहीं हो सकता है। महान राष्ट्रों का भाग्य-निर्णय भी क़समें ही करती हैं। अगर आज कांग्रेस और मुसलिम लीग आपस में समझौता करने की क़समें खा लें, तो दुनिया में उन्हें मिलने से कौन रोक सकता है ? लेकिन यह तो दुनिया में सभी जानते हैं कि मुसलिम लीग ने समझौता न करने की क़समें खा रक्खी हैं—इस उलटी क़सम खाने का नतीजा हम देख रहे हैं और देखेंगे। 'मित्र की पत्नी' में वर्तमान जीवन का विवाह की समस्या के साथ ख़ाका खींचा गया है। विवाह की समस्या हमारे समाज में कैसी है और पाश्चात्य सभ्यता तथा शिक्षा का उस पर क्या प्रभाव पड़ा इस शीर्षक के अन्दर बहुत सुन्दरता के साथ चित्रित किया गया है।

'ज्योतिषी जी' में ढोंगियों तथा अन्ध-विश्वासी मनुष्यों की हँसी उड़ाई गई है और एक सुंदर व्यंग है। ठग विद्या सीखकर शेखर जीवन को किस प्रकार सुख से व्यतीत करता है और

उसके ठीक दूसरी ओर उसका मित्र जो सदैव विद्या अध्ययन में शेखर से कुशल रहा है और अधिक विद्वान् है जगह जगह ठोकरें खाता फिरता है, यह हमारी शिक्षा तथा समाज की कुरीतियों पर व्यंग है।

उपसंहार

उपसंहार

वीर गाथा काल में कवियों को इतना अवकाश कहाँ था कि वे हँसते और हँसाते। वह देश के लिए महान् संकट का समय था। विदेशी आक्रमणों से देश की रक्षा के हेतु कवि उस समय वीरों को प्रोत्साहित करना अपना धर्म समझते थे। रण-विजयोत्सवों तथा शत्रु की पराजय के वर्णन में उपहास के कुछ उदाहरण प्राप्त होते हैं। वीर रस उस समय इतना प्रबल था कि अन्य रसों के लिए कोई स्थान ही न रहा।

भक्ति काल में हास्य रस के विकसित स्वरूप के दर्शन होते हैं। इस समय का हास्य आराध्य के प्रति भक्तों के उपालम्भों में निहित है। आराध्य के शील तथा मर्यादा के आवरण में पड़कर उस समय का हास्य अत्यन्त गम्भीर हो गया है। स्वामी के समक्ष दास को हँसने का अवकाश तथा साहस कहाँ? सखा भाव से आराधना करने वाले भी अपने मस्तिष्क से यह विचार नहीं हटा सके थे कि सखा होते हुए भी वह सर्वशक्तिमान् हैं अतः उनका भी हास्य मर्यादित ही है।

रीतिकाल के साथ देश की दशा तथा परिस्थिति में महान् परिवर्तन दिखायी देता है। यह समय रीति ग्रन्थकारों का था अतः लक्षण तथा उदाहरण देने के हेतु वे हास्य रस की ओर भी

मुखरित हुए। साथ ही साथ कविगण उस समय आश्रय तथा पुरस्कार के हेतु एक दरबार के बाद दूसरा दरबार झाँकते फिरे अतः आश्रयदाता को प्रसन्न रखने तथा उनके मनोरञ्जन के हेतु कवियों ने हास्य-रस-पूर्ण कविता की विशेष रूप से रचना की। फलतः इस समय हास्य का अच्छा सृजन हुआ तथा कवि भी अपने इस प्रयत्न में सफल रहे।

आधुनिक काल को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं १—भारतेन्दु युग तथा २—द्विवेदी युग। भारतेन्दु युग के लेखक अत्यन्त हास्यप्रिय तथा सजीव थे। अतः उनकी इस मनोवृत्ति की स्पष्ट छाप उनके साहित्य पर भी पड़ी। आवश्यकतानुसार इस काल में व्यंगात्मक हास्य की अधिक रचना हुई।

द्विवेदी युग में हास्य-लेखकों की रुचि अधिक परिमार्जित हो गई। इस समय हास्य, हास, वाग्वैदग्ध तथा शुद्ध हास्य—सभी प्रकार की उत्कृष्ट रचनायें हुईं। व्यंगात्मक हास्य की रचना करने में भी लेखक लगे हैं किन्तु अब व्यंग के लक्ष्य फैशन, सामाजिक तथा राजनैतिक कुरीतियाँ हो गयी हैं। इस समय के सफल हास्य लेखकों में श्री अन्नपूर्णानन्द जी, प्रसाद जी तथा श्री मिश्रबन्धु इत्यादि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। परम्परा आगत विदूषक भावना में इस समय के नाटककारों ने बड़ा परिवर्तन किया। इस समय की एक नवीन प्रवृत्ति भी उल्लेखनीय है। नाटकों में हास्य का सृजन प्रायः विदूषक के द्वारा होता था किन्तु इस समय एक नवीन प्रणाली का जन्म हुआ और वह है बिना विदूषक, अन्य नाटकीय पात्रों के द्वारा हास्य का उद्रेक। इस प्रणाली के नाटककारों में श्री मिश्रबन्धु जी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हास्य-रस की ओर इस समय लेखकों की रुचि विशेष रूप से आकृष्ट हुई है। फलस्वरूप इस साहित्य की उन्नति विशेष रूप से हुई है और हो रही है।

जब हम अपने साहित्य में सृजित हास्य रस की तुलना अन्य साहित्यों के हास्य रस से करते हैं तो हमें अभाव प्रतीत होता है। न तो उस कोटि और न उस मात्रा की रचना हमारे साहित्य में उपलब्ध होती है जिस कोटि की रचना अन्य विदेशी साहित्य में हुई है।

साहित्य के सभी अंगों में प्रगति के चिह्न प्रदर्शित होते हैं। अतः आशा है कि सुष्ठु हास्य की भी उन्नति होगी और लेखकों की रुचि अधिक परिमार्जित होकर साहित्य-भाण्डार पूर्ण करेगी।

राजस्थानी साहित्य में हास्यरस

राजस्थानी साहित्य में हास्य-रस

गत परिच्छेदों में हिन्दी साहित्य के अनेक अंगों में प्रयुक्त हास्य-रस का विवेचन प्रस्तुत किया जा चुका है। हास्य की प्रवृत्ति मानवता के जन्म से विकसित तथा पल्लवित हुई है। उस मानव-प्रवृत्ति की स्पष्ट छाया उसके प्रत्येक साहित्य में पड़ी है। हिन्दी भाषा की अन्य बोलियों तथा साहित्यों में भी हास्य-रस का सुन्दर प्रयोग हुआ है। मराठी, गुजराती, बुन्देलखण्डी, तथा राजस्थानी इत्यादि साहित्यों में हास्य का अत्यन्त सुष्ठु तथा परिष्कृत प्रयोग हुआ है।

राजस्थान, बहुत पूर्व समय से अपने वीर तथा युद्धकुशल नायकों के हेतु प्रसिद्ध है। राजस्थान का इतिहास वीरता तथा साहस की अपूर्व घटनाओं से रँगा पड़ा है। वीर रण बाँकुरों को शृंगार की उतनी आवश्यकता नहीं थी जितनी हास्य की। यंत्रों की भाँति वे सदैव युद्ध के कार्य में संलग्न नहीं रह सकते थे। मनुष्य की आवश्यकताओं के अनुसार उन्हें भी विश्राम, भोजन तथा हँसने की इच्छा होती होगी। परन्तु उनकी सभी इच्छाएँ वीरों की सी इच्छाएँ होती थीं। उनका हँसना आज के आलम्बनों के आधार पर नहीं होता था। उनके हास्य का लक्ष्य युद्ध में असफल कायरों का व्यक्तित्व होता था।

प्राचीन राजस्थान में 'कायरता' मानव का एक महान् उपहासनीय दोष तथा अवगुण निर्धारित की गई थी। युद्ध क्षेत्र से उनके पलायमान का दृश्य बहुत समय से राजस्थानी साहित्यिकों को हँसाता चला आ रहा है। परन्तु समय के साथ साहित्यिक अभिरुचि में भी अन्तर उपस्थित हुए। आज उसी राजस्थानी साहित्य में कृपण तथा मानव अपकर्ष मनुष्यों को हँसाते हैं। तात्पर्य यह है कि हास्य की शाश्वत भावना भिन्न-भिन्न देशों में समय के साथ परिवर्तित होती रहती है। परन्तु यत्र-तत्र हमें अब भी प्राचीन विचारों का परिपोषण मिलता है।

आधुनिक काल में, राजस्थानी के लेखकों तथा कवियों ने कायरों के उपहास में 'कायर बावनी' तथा 'विदुर बत्तीसी' जैसी हास्य काव्यों की रचना की है। नीचे हम कुछ ऐसे ही व्यङ्ग चित्रों को अंकित करते हैं।

एक व्यर्थ की डींग भरनेवाले वीर युद्ध के लिए प्रस्थान करते हैं परन्तु बाहर देहरी पर ही एक अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित अश्वारोहित सैनिक को दीवाल पर अंकित देखकर लौट आते हैं, तो उसकी पत्नी कहती है:—

"पिउ समर में जावता पाछा़र गया पधार भन्डिया दीठो भीतं पर भाला सहितसवीर।" इनकी वीरता का क्या कहना। विचारा वीर किम जोतिहवाई चक्कियों से भी भिड़ तो गया था। ये महावीर उससे भी आगे निकले।

एक और महावीर तीसमार खाँ युद्ध के लिये प्रस्थान करते हैं तो उनकी माता बड़ी चिन्तातुर हो जाती है। बहू को जब यह मालूम होता है तो वह अपनी सास से कहती है कि आप चिन्ता क्यों कर रही हैं? मैं आपके पुत्र को भली प्रकार जानती हूँ; वह शीघ्र ही आ जायँगे। डींग हाँकने में तो वह भले ही काफी समय

लगा दें परन्तु भागते समय वह किसी से भी पीछे न रहेंगे। आप चिन्ता न करें। अपने वस्त्रादि वह भले ही छिनवा दें पर शरीर से अवश्य सकुशल घर वापस आयेंगे। वहू का इतना कहना ही था कि दोनों ने देखा कि नङ्गे पाँव माँ का लाड़ला सकुशल बड़ी तीव्र गति से भागा आ रहा है। माँ ने हँसकर बहू की ओर देखकर कहा कि "बहू तू तो ज्योतिषी है, जो भावी तूने कही थी, वह अक्षरशः सत्य निकली।"

"साची गलक हूसुणो सासूजी, दीसो कोय उदासी
मो कन्थ तणो भरोसो मोने ओतो कुसले आसी
लड़तो थको रहसीलारे बातो घणी वणासी
भागी खाग नणदरो वीरो आग आसी"

सास बहू से कहती है—

"डील तणो कोसाडे डेरे आयो सीस उघाडे
दाद बहू ने दीधी सासू बातों आगम बाची
कहती जिसो तहरो केथो साँची ए बहू साची॥"

इसी प्रकार अन्य उपहास पूर्ण कायरों के चित्रों में कवियों ने हास्य का उद्रेक किया है। एक स्त्री अपनी सहेली से कहती है कि विवाह होते ही मैंने जान लिया था कि मैं विधवा तो कभी हूँगी ही नहीं कारण कि, पति मरना तो जानते ही नहीं। बार-बार चलते चलते ही बालू की गीली दीवाल के समान वे गिरते रहते हैं:—

"मैं परणतीं परखियो लावो थणो लडाक,
आलेडारी भींत ज्यू पडे पडाक पडाक।
मैं जाण्यों अधसेर है, पिड तो पूरा सेर,
हेम सुता पत वाहणा ताने रती न फेर॥"

कविवर राजा बाँकीदास जी ने अपनी 'कायर-बावनी' में

इन कायरों की बड़ी खिल्ली उड़ाई है। बाँकीदासजी लिखते हैं, कि जब वे कायर युद्धस्थल से अपनी जान बचाकर भागते हैं तो उनके मुँह से दैय्या, मैय्या, इत्यादि शब्द ही निकल पाते हैं और अपने को बड़ा शांत वृत्तिवाला बताकर दाँत दिखाते हैं :—

आगक भारथ भीड में वाणी सह विसरत,
मुख वापूठो, भावडो, माइडो भाखत।
पैलो खोसे पाघडी, इसें दिखाकू दन्त;
कायर माने क्यू कहे सुद्ध सुभावा सेत ॥

(कायर बावनी)

एक कायर संसार भर में दौड़ आता है परन्तु उसे आश्रय नहीं मिलता तो वह चन्द्रदेव से प्रार्थना करता है कि हे देव ! इस त्रिलोक में मुझे किसी ने आश्रय न दिया। आप मुझे कलंक की तरह अपनी गोद में छिपा लें.—

"कायर थाको दौड़कर ससि रन करे पुकार।
मृग ज्यू मूझ बसावजे मण्डल तणे मंझार ॥

(कायर बावनी)

परन्तु युद्ध से पलायमान वीरों के चित्र आज राजस्थानी साहित्य में हास्य का उद्रेक नहीं करते। उनका अस्तित्व आधुनिक राजस्थानी साहित्य में मृत हो चुका है। कारण कि न तो अब वैसे युद्ध ही होते हैं और न वैसे भगने के अवसर ही हैं। आज हमारे उस महायुद्ध में जान बचाकर भगना एक गुण (Successful Retreat) माना जाता है। आधुनिक राजस्थानी साहित्य में फैशन, सामाजिक रूढ़ियाँ, मानसिक अपकर्ष आदि ने कायरों का स्थान ले लिया है।

'हास्य का वैज्ञानिक अध्ययन'

मानव-शरीर की तुलना यदि लंकाशायर की बड़ी-से-बड़ी मशीनों से की जाय तो वे अत्यन्त सरल प्रतीत होंगी। विज्ञान-शास्त्र इतनी उन्नति कर चुका है कि आधुनिक युग, वैज्ञानिक युग कहा जाता है। फिर मानव-शरीर के अनेक भागों के विषय में वैज्ञानिक आज भी मौन हैं। यद्यपि विज्ञान द्वारा आश्चर्यजनक परिवर्तन तथा कौतूहलजनक आविष्कार के लिये मनुष्य-समाज कृतज्ञ रहेगा, तो भी छोटा-सा मानव-शरीर वैज्ञानिकों के लिये ब्रह्माण्ड के समान सुविस्तृत है तथा जीवन की अनेक गुत्थियों के समान बहुत से ऐसे प्रश्न हैं, जिनका कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं है।

'वृक्ष से फल गिरना' एक साधारण-सी बात है, परन्तु न्यूटन को यही साधारण बात आपत्तिकर सिद्ध हुई। इसी प्रकार हास्य-रुदन आदि समस्यायें साधारण मनुष्यों के लिये तो दैनिक तथा अचिन्त्य समस्यायें हैं, किन्तु एक वैज्ञानिक मस्तिष्क (Physiologist) को उलझाने के लिये वे पर्याप्त मात्रा में हैं।

अपने विषय विशेष का कलेवर बढ़ने के भय से तथा अपने यथेष्ट विषय से दूर का विषय होते हुए भी वैज्ञानिकों का हास्य के प्रति स्थिर विचार लिखते समय 'मुख्य-विषय' का यथेष्ट अंग

न होते हुये भी यह आवश्यक अंग प्रतीत हुआ। अतः वैज्ञानिकों के मत में हास्य की परिभापा इस प्रकार है:—

"वाह्य वातावरण एवं कोई भूली-भटकी स्मृति द्वारा मस्तिष्क-गत विशिष्ट केन्द्र की हलचल का परिणाम जो होठों एवं मन तथा मुख की भाव-भंगिमा पर लौटकर प्रतीत होता है, उसे हास्य कहते हैं।" यद्यपि यह परिभाषा सर्वथा सत्य तो नहीं है, फिर भी अधिकांश ठीक है।

मस्तिष्क सिर की अस्थियों के भीतर एक मांस का लोथड़ा है। यही समस्त शरीर की क्रियाओं का नियन्त्रण करता है। बोलना, हिलना, डुलना, सोचना आदि सभी क्रियायें इसी मस्तिष्क पर अवलम्बित हैं। इस प्रकार की सभी क्रियाओं के केन्द्र (centres) मस्तिष्क में स्थित हैं।

समस्त मस्तिष्क दो समान भागों (Hemispheres) में विभाजित हैं। इन दोनों भागों में प्रत्येक कार्य के लिये अलग-अलग केन्द्र हैं। जिस प्रकार दृष्टि-केन्द्र (Visual centre) दृष्टि के लिये है, वाणी के लिये वाणी-केन्द्र (Broca's centre) है, उसी प्रकार हास्य के लिये हास्य-केन्द्र (centre of laughing) है। ये सभी केन्द्र एक दूसरे के समीपस्थ हैं। यदि किसी केन्द्र विशेष का कारणवश ह्रास हो जाय तो तत्सम्बन्धी क्रिया का भी शरीर में व्याघात हो जायगा।

"हास्य-क्रिया" निम्नलिखित कारणों से होती है—

१. दृष्टि।

२. श्रवण।

३. वाणी।

४. चिन्तन।

५. नाड्यन्त प्रतीति (cutaneores Secsation).

६. स्वाद तथा गंध।

हमारे समस्त शरीर में सूचना-वाहक विभाग तथा तत्संबंधी यथेष्ट प्रतिक्रिया करानेवाले विभागों का शासन विचित्र है। शरीर में असंख्य नाड़ी-मण्डलों के जाल बिछे हैं, जिनसे शरीर का कोई अणु-परमाणु बचा नहीं। उन्हीं जालों के कारण उपर्युक्त दोनों विभागों का कार्य सुचारु रूप से संपादित हुआ करता है। यदि असावधानी के कारण हमारी उँगली जलने लगे तो शीघ्रातिशीघ्र हमारे बिना किसी विशेष प्रयास के वह अग्नि से हट जाती है। इस शीघ्रता का कारण नाड़ियों की कार्य-क्षमता तथा मस्तिष्क का सहज-ज्ञान (common sense) है।

यही नाड़ी-जाल हास्य का कारण है। जब हम प्रहसनीय दृश्य देखते हैं, तो वह दृश्य जब नेत्रों में दृश्य बनकर "दृष्टि-नाड़ी" (Optic Nerve) द्वारा दृष्टि-केन्द्र (Visual centre) पर पहुँचता है, तब वह वास्तविक दृश्य बनता है, और मन (Mind) को उस दृश्य की प्रतीति होती है।

जब दृष्टि-केन्द्र से हास्य-केन्द्र तक वह दृश्य दोनों केन्द्रों से सुसम्बन्धित असंख्य नाड़ी-सूत्रों (Nerve Tracts) द्वारा पहुँचता है, जिससे हास्य-केन्द्र के असंख्य कोष्ठाणु (Cells) उत्तेजित हो जाते हैं, तब परिवर्तित-क्रिया (Reflex action) जो नाड़ियों की विशेष कार्य-क्षमता है, उसके द्वारा शरीर की अन्य नाड़ियाँ (नाड़ी-सूत्रों) द्वारा उत्तेजित की जाती है। जिस प्रकार की नाड़ियों पर इस "परिवर्तित-क्रिया" (reflex action) का प्रभाव पड़ता है, उसी प्रकार की भाव-भंगिमा बन जाती है। यदि प्राणदा नाड़ी (Vagus Nerve) उत्तेजित हो जाती है, तो उसका प्रभाव वक्षःस्थल के संकुचन एवं विस्फारण तथा उदर की अन्य पेशियों एवं अवयवों पर पड़ता

है। इसी प्रकार यदि परिवर्तित-क्रिया मस्तिष्कगत हनुप्रादेशिक केन्द्रों (Areas for the opening and closing of jaws) को उत्तेजित कर देती है, तो अनेक मांस-पेशियाँ कार्य-भार अपने ऊपर लेकर, मुख की भाव-भंगिमा बदल देती हैं। अतिहसित तथा उपहसित हास्य में हमारा मुँह खुलता तथा बन्द होता रहता है, इसका भी कारण वही मौखिक नाड़ियों की उत्तेजनामात्र है।

कभी-कभी "शब्द विशेष" के श्रवणमात्र से हम हँसने लगते हैं। शब्द द्वारा झंकृत वायु Tympanic Membrane को हिला देती है, जिसके कारण मध्य-कर्ण तथा अन्तःकरण के विशेष अवयवों में एक विशिष्ट भौतिक प्रक्रिया होती है, जिससे तत्सम्बन्धी कर्ण-नाड़ी (Acoustic Nerve) की एक शाखा श्रवण-नाड़ी (Cochlear-Nerve) द्वारा वह "शब्द कम्पन" श्रवण-केन्द्र तक पहुँचती है, तब वह शब्द सुनाई पड़ता है। यदि वह शब्द हास्योत्पादक हुआ, तो यह सूचना नाड़ी-सूत्रों (Nerve Tracts) द्वारा हास्य-केन्द्र तक पहुँचाई जाती है, जिससे उसके कोष्ठाणु (cells) उत्तेजित हो जाते हैं। फिर इस उत्तेजना का प्रसार विभिन्न नाड़ियों द्वारा वक्षःस्थलगत परिवर्तित तथा मुख की भाव-भंगिमा में प्रतीत होता है, जिसका वर्णन दृश्य-हास्य में हुआ है।

इसी प्रकार वाणी द्वारा हास्य भी होता है। मनुष्य स्वयं बात कहते-कहते हँसने लगता है। उसका कारण यह है कि बोलते समय वाणी केन्द्र (Broca's Centre) उत्तेजित रहता है। जब कोई हास्यप्रद बात आ गई तो वाणी-केन्द्र से नाड़ी-सूत्र तथा कार्य-लिप्त नाड़ियों द्वारा हास्य-केन्द्र उत्तेजित कर दिया जाता है जिससे फिर उक्त परिवर्तन होकर हास्य बाहर प्रकट हो जाता है।

चिन्तन के क्षणों में मस्तिष्क का तत्सम्बन्धी अवयव कार्य में लगा रहता है। यदि उस समय हास्योत्पादक बात का स्मरण आ गया, तो उस अवयव के तन्तु हास्य-केन्द्र को जाग्रत कर उपर्युक्त विधि से हँसा देते हैं। वैज्ञानिकों का मत है कि सम्भवतः 'चिन्त्य-हास्य' में शरीर की अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्राव का भी हाथ होगा।

प्रायः कक्ष प्रदेश (Auxillary Area) आदि स्थानों में सहसा स्पर्श कर देने से हास्य का उद्रेक हो जाता है। इस गुद-गुदाने की क्रिया से हास्य का उद्रेक किस प्रकार होता है, इसके विषय में वैज्ञानिकों का मत है कि यह क्रिया साधारण प्रतीत (General Sensation) और विशिष्ट प्रतीत (Special Sensation) द्वारा होती है। मांस-पेशी तथा नाड़ियों के जाल के अन्तिम अत्यन्त सूक्ष्म सूत्र द्वारा सूचना-वाहन कार्य होता है। यह सूत्र अन्य अनेक सूत्रों से सम्बन्धित है और उनका तारतम्य स्थान विशेष से मस्तिष्क तक, फिर वहाँ से शरीर के प्रत्येक अवयव से है। इन सूत्रों में सूचना-वाहक प्रसूत्र (Sensory fibres) और तत्क्रिया प्रसूत्र (Motor fibres) सम्मिश्रित हैं। एक से उसकी सूचना मस्तिष्क तक पहुँचाई जाती है और एक से उसकी प्रतिक्रिया के अर्थ यथोचित कार्य सम्पादन कराया जाता है। इनका बाहुल्य "सुषुम्ना नाड़ी" (Spinal Cord) में है। इन नाड़ियों द्वारा गुदगुदाने की क्रिया तत्सम्बन्धी मस्तिष्क-प्रदेश में पहुँचता है और वहाँ से पुनः नाड़ी-सूत्रों द्वारा हास्य-केन्द्र का उन्मथन होकर पूर्ववत् क्रिया का सम्पादन होता है और हमें हँसी आ जाती है।

इसी प्रकार हमें कभी-कभी स्वाद-विशेष और सुगन्ध-विशेष से भी हँसी आ जाती है। प्रायः स्वाद करने से स्वाद-केन्द्र

(Taste Centre) उत्तेजित हो जाता है। इस क्रिया में अन्य भौतिक क्रियाओं का सम्मिश्रण है। इन क्रियाओं से स्वाद-केन्द्र उत्तेजित होकर पूर्ववत् अपने नाड़ी-सूत्रों से हास्य-केन्द्र को जाग्रत् करता है। परिवर्तित क्रिया द्वारा हास्य का उद्रेक हो जाता है। इसी प्रकार गन्ध विशेष द्वारा भी हास्य का उद्रेक प्रायः हो जाता है।

आत्मसंयम, हास्योचित वस्तुविशेष के गुरुत्व एवं हल्केपन का प्रभाव भी हास्य-केन्द्र पर पड़ता है। यदि हास्य-केन्द्र के कोष्ठाणु (S·lls) अधिक परिमाण में सहसा जाग्रत् हो गये तथा उनकी प्रतिक्रिया झटके के साथ हास्य-सम्बन्धी नाड़ियों पर पड़ी तो अट्टहास का उद्रेक होता है, अन्यथा स्मितरेखा ही मुख पर खिंच जाती है।

हास्य के लाभों पर वैज्ञानिकों का मत है कि इस क्रिया के द्वारा फुफ्फुस (Lungs) के अत्यन्त सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाग (AIveoli) का आकुञ्चन तथा प्रसारण होता है जिससे वहाँ की अवस्थित वायु का निष्कासन होता है तथा स्वच्छ ताजी वायु का भरण होता है। फुफ्फुस के प्रत्येक सूत्र का व्यायाम भी सुचारु रूप से हो जाता है। इसी क्रिया के द्वारा वक्षोदर मध्यस्थ पेशी (Diadhragm) की हलचल होती है, जिसके कारण हृदय यकृत (Liver) तथा अन्य उदरस्थित अवयवों एवं पेशियों पर दबाव पड़ता है और वे सुचारु रूप से अपना कार्य करने लगते हैं। हास्य के द्वारा चित्त में प्रसन्नता एवं शरीर में स्फूर्ति का संचार हो जाता है। वैज्ञानिक स्मित हास्य से दिल खोलकर हँसने को अधिक उपयोगी समझते हैं। कारण, इस प्रकार के हास्य से शरीर की सबसे आवश्यक वस्तु फुफ्फुस का व्यायाम हो जाता है।

परिशिष्ट प्रथम

चयनिका

बन्दौ विविध भाँति निज बामा !
जाकी कृपा दस बजे प्रात: मिलै चाय अभिरामा।
जो प्रतिपल पाउडर पोमेडमय, विलसै ललित ललामा।
बारम्बार वसन परिवर्तन-निरत नितान्त निकामा।
'बिल' बिलोक बन बिनत बदन, बोलत ज्यों बिप्र सुदामा।
उरिन होइ पुनि रुख न मिलावत, पहलवान बिन गामा।
—चोंच

बन्दों काँगरेसी राज !
कृपा पाकर जाहि की सब ओर सुख का साज।
सब प्रजा इमि है सुखी, ज्यों चटक पाकर बाज।
या कि भादों तीज आये, सुखी होहिं बजाज।
बढ़ा सुख ज्यों सोप में से बहै अतुलित गाज।
देख ग्राम सुधार का यह परम अद्भुत काज।
हो रहा हर्षित हृदय में सभी लण्ठ समाज।
पारसी मदिरा-रहित रोवैं विविध विधि आज।
क्यों करैं मधुपान जो उन्माद-ग्रस्त अलाज।
बढ़ैं यों नेता हमारे सभी बे-अन्दाज।
आज कल ज्यों मूलधन से बढ़ा करता ब्याज।
—चोंच

अम्मा, कब हूँगा मैं लम्बा !
कितने रोज पिया बालामृत कितना किया टिटम्बा।
पर न हुआ उतना ऊँचा जितना पानी का बम्बा।
तू कहती थी लम्बा होगा, होगा तुझे अचम्भा।
होगा वैसा गड़ा सड़क पर जैसा बिजली खम्भा।
पर खम्भे की कौन कहे, मैं हुआ न ऊँचा डण्डा।
री मा मा ! रख दूर उठाकर यह सब बिस्कुट अण्डा।
—चोंच

तजो रे मन क्लब विमुखन को संग।
इनके सग किये से प्यारे होत सभ्यता भंग।
जो न जाय क्लब नितप्रति प्रिय सो अति मलीन अभंग।
जाहिल जाट चपाट चबाई पड़ी बुद्धि में भंग।
क्लब महिमा गावहिं कवियित्री भी सिनेमा स्वर सरंग।
ज ाँ मिलै सुमुखिन को दर्शन, परस मिलै मृदु अंग।
कहत कबीर सुनो बेटा साधो, क्लब में सब सुख ढंग।
—चोंच

हरि 'औध' के द्वारे सकारे गया, कर दाढ़ी पै फेरते वे निकसे।
अवलोकत ही हौं महाकवि को,
ठग सा गया जे न ठगे धिक से।
पढ़ने लगे चौपदे चाव से वे,
कभी झाँक भी लेते रहे चिक से।
अपना सिर मैं भी हिलाता रहा,
वे सुनाते रहे कविता पिक से।

दिवस का अवसान समीप था,
गगन था कुछ लोहित हो चला।

धरहरों पर थी अब छा रही,
मिसेज़ लोटस के प्रिय की प्रभा।
गगन जो दिन में नवनील था,
बदल रंग हुआ अब लाल था।
पठित कालेज के लड़के सभी,
बदलते कपड़े दस बार ज्यों।

पशु नुमायश अन्दर हो रहा,
अजब ज्यों घनघोर मुशायरा।
ध्वनिमयी विविधा विहगावली,
उड़ रही नभ मण्डल मध्य थी।

—चोंच

बलिहारी गुरु आपनै ज्यों बेनिया को घास।
जिन सालाना में कियो देइ देइ नम्बर पास।

खिड़की छोटी, भीड़ बहु, सड़क तङ्ग, बहुकार।
कहु संतौ क्यूँ पाइये, सिनेमा-टिकट विचार॥

शिमला जावै, देहली, चहै लखनऊ जाय।
बिन रिकमेन्डेशन मिले, मिलै न सर्विस हाय॥

रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात।
ज्यों वोटर के द्वार पर, खड़े सेठ सरमात॥

साँई अपने चित्त की भूल न कहिये कोय।
चहै लोग तुमको बहुत देवैं मंजु मकोय॥
देवैं मंजु मकोय, चहै सब देयँ पपीता।
चहै पिलावैं भंग, चहै सब करैं फजीता॥

कह गिरधर कविराय, खिलावैं चहैं मलाई।
पर निज मन की आप कबौं कहिये नहिं साँई॥

जुदाई में तुम्हारी हम न यों बेज़ार हो जाते।
अगर तुम पिछले हफ़्ते में न थानेदार हो जाते॥

अगर कोयले से कुछ इस देह की रंगत भली होती।
यक़ीं मानों कि हम भी थोड़े बरखुरदार हो जाते॥

तुलसी चन्दा के दिये सुख उपजत चहुँ ओर।
बसीकरन यह मंत्र है, तजौ कृपनता घोर॥

साहेब से सब होत हैं, बन्दे ते कछु नाहिं।
नाई को बाभन करै, बाभन नाई माहिं॥

नेता ते मंत्री भया, सो ढांइ गया बिलाय।
जो कुछु था सोई भया, अब कुछ कहा न जाय॥

नेता ऐसा चाहिए, जैसा रूप सुभाय।
चन्दा सारा गहि रहै, देय रसीद उड़ाय॥

यह घर थानेदार का खाला का घर नाहिं।
नोट निकारै, पग धरै, तब पैठै घर माहिं॥

'अमन' समै सुमिरयो नहीं, 'रायट' में अब याद।
कैसे अब उस संठ की जएट सुनै फिरियाद॥

गये खरीदन आम वह, ले रुपया बेकाम।
दुविधा में दोऊ गये, पैसा मिला न आम॥

कबिरा मिस के साथ में पीकर रहिये चाय।
खीर खाँड भोजन मिलै, घरनी संग न जाय॥

टिकै धर्मशाला चहै, घर चाहै ससुराल।
बिन होटल भोजन किये, मिलै न अच्छा माल॥

चन्दा और पद-ग्रहण की जब लग मन में खान।
पटवारी औ पन्त हैं दोनों एक समान॥

सबै चहत हैं लीडरी लीडर चहै न कोय।
कह कबीर 'लीडर' भजै, तुरत लीडरी होय॥

गांधी जिन्ना एक से, बिरला जानै कोय।
लाट मिलन हित विकल दोउ, आपुस मेल न होय॥

जो रहीम उत्तम प्रकृति काह करैं बदख्वार।
लाट तनिक बदलैं नहीं नेता मिलैं हजार॥

अनुचित उचित रहीम लघु, करहिं बड़ेन के जोर।
ज्यों सहाय लहि पुलिस को, माल पचावैं चोर॥

स्वयं लाट जाचक भये, दिया द्रव्य इफ़रात।
तातें 'सर' भये सेठ जी, दिया दूर नहिं जात॥

दाढ़ी बाढ़ै बदन यदि आँगन बाढ़ै घास।
तुरत छील कर फेंकिये, यहि सज्जन गुन खास॥

पिल्ला लीन्हे गोद में मोटर भई सवार।
अली भली घूमन चलीं किये समाज सुधार॥
किये समाज सुधार हवा योरप की लागी।
शुद्ध विदेशी चाल ढाल सों मति अनुरागी॥

मियाँ मचावैं सोर करैं अब तोबा तिल्ला।
पूत धाय के गोद, खेलावैं बीबो पिल्ला॥

प्रभू जी मेरे औगुन चित न धरौ।
सेवा सों सूनो हिय सर है, स्वारथ-नीर भरौ॥
परमारथ को नाम सुनत ही हा! बिन मौत मरौ।
रिसबत को रुपया चट चाट्यौ, चन्दा चुप्प चरौ॥
अहमभाव की ओढ़ उढ़निया घर बाहर झगरौ।
'सूरदास' चुंगी को चेरो करौ, न टेर टरौ॥

सुनो वोटर देव! दयाल प्रभो हमको इक आस तिहारी है।
हमरे सम दूसर और कोऊ, नहिं वोटन को अधिकारी है॥
अजी, मोटर भेज बुलाऊँ तुम्हें कहा ताँगेन की असवारी है।
बस वोट को दान करो हमको न तु जीवन में बड़ी ख्वारी है॥
देखो दाँत निपोरि रह्यौ कबसों अब नेक दया उर लाओ प्रभो।
बिन वोट के मैं मर जाउँगो नाथ! सु-वोट-वटी खिलवाओ प्रभो॥
लेउ नोट हजूर हजारन के मिस मेम्बरी से मिलवाओ प्रभो।
तुम हो बस नाथ अनाथन के, मरो इश्क में मोहिं जिलाओ प्रभो॥

या खुरपी अरु फावरिया पर घास-भरी गठरी तजि डारौं।
पैर चलाइबे खेत नराइबे को दुख भैंसि चराइ बिसारौं॥
'रसखान' कबौं इन हाथन सों पटवारी-दरोगा के पाँय पखारौं।
खोंसि के छानि कौ फूस-फटेरो महाजन की मुड़िया महँ मारौं॥

भयो क्यों अनचाहत को संग।
खुपिया पुलिस परी है पीछे करि डारे हम तंग।
जहँ-जहँ जात दिखात तहाँ ही खात न्हात बतरात।
चौंकि परति चञ्चल तुरंग सी खरकि जात जौ पात।

हे विश्व-पालक ईश करुणाकन्द ! करुणा कीजिए।
जगदीश दीनानाथ ! हमको शक्ति ऐसी दीजिए॥
सीटी बजे जब रेल की हम दौड़ कर बैठें तभी।
लेना टिकट या पास हमको हो न इष्ट प्रभो कभी॥
चैकर चलें जब ट्रेन में रक्षित रहें उनसे सदा।
हो जायँ टट्टी ओट में, सो जायँ या छिप कर तदा॥
पकड़े अगर कोई कहीं तो है बड़ा संकट अहो।
ऐसे समय सब कुछ सहो, चुप-चुप रहो 'शिव-शिव' कहो॥

चींटी की चलावै को मसा के मुँह आय जाय,
स्वास की पवन लागे कोसन भगत है।
ऐनक लगाए मरु मरु कै निहारे जात,
अनु परमान की समानता खगत है॥
'बेनी' कवि कहैं और कहाँ लौं बखान करौं,
मेरे जान ब्रह्म को बिचारिबो सुगत है।
ऐसे आम दीने दयाराम मन मोद करि,
जाके आगे सरसों सुमेर सों लगत है॥

ल्याये हौ मोहि दया करि कै तो हरी हरी घास खरी भुस खैहौं।
ब्यान पचासक ब्याइ चुकी अब भूलि नहीं सपनेहु ब्यैहौं॥
हौं महिषासुर ते बड़ी बैस में तो घर जात कलंक लगैहौं।
दूध को नाम न लेहु कबीसुर मूतन ते नदी नार बहैहौं॥१

पेट पिराय तो पीठि टटोलत पीठि पिराय तो पाँव निहारै।
दै पुरिया पहिले विष की पुनि पीछे मरे पर रोग विचारै॥

१—बूढ़ी भैंस दान में मिलने पर किसी कवि द्वारा विरचित।

बीस रुपइया करें कर फ़ीस न देत जवाब न त्यागत कारै।
भाखै 'प्रधान' ये बैद कसाई हैं दैव न मारै तो आपहि मारै॥

दै पुरिया दस बीस क मारै पचासक आसन परे संहारे।
त्यौं रस के बस कै बहुतेरन गोलिन से सत साठिन तारे॥
चूरन से किये चूर अनेक जुलाब के जोर को लाखन मारे।
बैद भये हरगोविन्द जो तब से जमदूत फिरै सरतारे॥

शुक्लश्यामांगशोभाढ्यं, गौन साडीविभूषिताम्।
महामोहलसद्वाला, करालां, काल सोदराम्॥
चन्दा चुंगी विचिन्वन्तीं, खुली नालीं निकालतीम्।
गलतीं च नजर अपनी, चारों जानिब रुआब से॥
टौनहाले महा भीमे, टेबिल - चेयर - शतान्विते।
लैम्प लोलुप सन्दीप्ते, प्यून भृत्य निषेविते॥
उच्चासन सभासीनां, चेयरमैन - चलत्कराम्।
महाविचार मे मग्नां, मनो लग्नां धनागमे॥२

कचिद्धुक्का कचित्थुक्का कचिन्नासाग्रवर्तिनी।
एषा त्रिपथगा गंगा पुनाति भुवनत्रयम्॥३

तकारो तत्वरूपाय, मकारो मोक्षदायकः।
खकारो खेदनाशाय, त्रयगुणास्यतभालयः॥३
जपादौ च जपान्ते च, जपमध्ये पुनः पुनः।
बिना तमाल पत्रेण जप सिद्धिर्नजायते॥३

१—'प्रधान' कवि द्वारा वर्णित किसी नीम हकीम का चित्रण।
२—पं० श्रीधर पाठक लिखित 'म्युनिसपलिटी-स्तुति'
३—तम्बाकू की प्रशंसा।

आकाशे चण्डिका देवी, पाताले भुवनेश्वरी।
भूलोके विजया देवी, सर्वसिद्धि प्रदायिनी ॥५

कमले कमला शेते, हर: शेते हिमालये।
क्षीराब्धौ च हरि: शेते, मन्ये मत्कुणशंकया ॥६

असारे खलु संसारे सारं श्वसुर मन्दिरम्।
हरो हिमालये शेते हरि: शेते महोदधौ ॥७

कहो बेटा !
क्यों न कुछ लिख पढ़ रहे हो, ठीक पथ अब गहो बेटा !
गगन में जैसे सितारे, भवन में जैसे ओसारे !
सुधा में जैसे दुलारे, उस तरह तुम रहो बेटा !
बम्बई में पारसी ज्यों, मेज ऊपर आरसी ज्यों,
रेडियो में फारसी ज्यों, उस तरह सुख लहो बेटा !
पढ़न में श्रम कम पड़ेगा, तो न फल उत्तम पड़ेगा,
हाँकना टमटम पड़ेगा, इसलिये दुख सहो बेटा।
प्रथम श्रम कम कर सहें, सब संकटों को घासलेटी,
सदा दंगे के अनन्तर मेल की बनती कमेटी !

तुम हो प्रिय कहो कौन !
बकबक कुछ करो और, गुमसुम मत रहो मौन !
तुम हो प्रिय कहो कौन !
धरकर उर बीच धीर, अचल अटल रहो वीर,

५—विजया की प्रशंसा।

६—खटमल के भय से।

७—ससुराल माहात्म्य।

खाओ खूब खाँड खीर, लड़ो भिड़ो पियो नीर,
आओ, कर दो प्रसन्न मेरा यह हृदय-भौन!
तुम हो प्रिय कहो कौन!
नयन युगल ज्यों कुरंग, नासा यह ज्यों सुरंग,
उपर विमल ज्यों मृदंग, सरस अमित अंग अंग,
मेरी बस मन पतंग, हित हो तुम मलय पौन!
तुम हो प्रिय कहो कौन!
सीधी बछिया समान, गोरी खड़िया समान,
पर हो तुम लेती उठा, सर पर निज आसमान,
लगती तब तो हो जैसे फोड़े पर मिर्च नौन!
तुम हो प्रिय कहो कौन!

हम दोनों कैसे हों समान।
तुम कृशित काय, हम पहलवान॥
तुम रेशम की रूमाल कलित, मैं जूता फटा पुराना।
मैं कटहल का कोआ कठोर, तुम हो अनार बेदाना॥
तुम राजमहल, मैं हूँ मचान।
तुम कृशित काय, मैं पहलवान॥
मैं घड़ा लोह का हूँ भद्दा, तुम घड़ा मनोहर जेबी।
तुम बी० ए० बी० एच० यू० की हो, मैं नहीं जानता ए० बी०॥
तुम फव्वारा, मैं नाबदान।
तुम कृशित काय, मैं पहलवान॥
तुम हलुआ सोहन हो ताजा, मैं हूँ गुलगप्पा बासी।
तुम दँतखोदनी चाँदी की हो, मैं हूँ ताला भुन्नासी॥
तुम मुस्टो मैं मूसा महान्।
तुम कृशित काय, मैं पहलवान॥

यार ! प्रियतमा बहुत मुटानी।
यद्यपि दिन में सात बार ही करती भोजन पानी।
नहीं नाप का इनके साया, मिलता है, मैंने ढुँढ़वाया।
इतना तन में खून समाया, हुई फूलकर तुम्बा काया।
इनकी कमर नापने में टेलर को भी है हैरानी ॥ यार० ॥
दिन भर लेटी कलपाती है, कठिनाई से चल पाती है।
एक एक यह पग रखने में, आह सैकड़ों बल खाती है ॥
स्प्रिंगदार है कमर लचकती, ज्यों सायकिल जापानी।
फूली मानो डबल रोटी है बकती सदा खरी खोटी है ॥
हिटलर के समान है तगड़ा, मुसोलिनी ऐसी मोटी है।
मैं तो उन्हें समझता हूँ पूरा अहमद शाह दुर्रानी ॥
लम्बी है मानो पोलर है, सड़क पीटने का रोलर है।
मेरी सगी सास की बेटी, मेरे तन की कण्ट्रोलर है ॥
आँखें लाल टमाटर ऐसी, सदा बहाती पानी ॥ यार० ॥
अपने एक बार के धक्के से वह मुझे गिरा सकती है।
भैंसों की प्रदर्शनी में भी पुरस्कार वह पा सकती है ॥
बहुत फौजदारी करती है, होती जब दीवानी।
यार ! प्रियतमा बहुत मुटानी ॥

आज मुझे है सिनेमा जाना !
होटल से मैं खा आऊँगी, स्वयं पका लेना तुम खाना।
जल्द वहाँ से तुम उतार कर ला दो मेरी साड़ी ॥
छः बजने में सात मिनट हैं मँगवा दो अब गाड़ी।
अगर लौटने में हो देरी, तो तुम नहीं तनिक घबड़ाना ॥
आज मुझे है सिनेमा जाना !
दस बजने के पहले प्यारे, झपकी भी तुम ले न सकोगे।

भले याद आया हा मुझको रुपये क्या कुछ दे न सकोगे।
अगर जग पड़े मुन्नी बेटी, थपकी देकर उसे सुलाना।
आज मुझे है सिनेमा जाना!
बहुत शोर सुनती हूँ, घर घर इस 'पुकार' का धूमधड़क्का।
पर मैं इसे देख लूँ पहले, तब होगा कुछ निश्चय पक्का॥
फिर तुम भी देखना नहीं तो शायद पड़े तुम्हें पछताना।
आज मुझे है सिनेमा जाना!

तेरे घर के द्वार बहुत हैं किससे होकर आऊँ मैं?
काशी टाकी के समीप सब खुमचेवाले खड़े हुए हैं,
बीड़ी बनानेवाले सिनेमा टिकट बेचते अड़े हुए हैं।
नहीं तनिक भी ये सुनते हैं, कितना भी चिल्लाऊँ मैं॥ तेरे० ॥
गोदौलिया पर इक्केवाले, और चौक में रिक्शेवाले,
थाने के सामने सटे हैं, मेवेवाले गमछेवाले।
इनका उल्लङ्घन दुरूह है, देख देख घबड़ाऊँ मैं॥ तेरे० ॥
सट्टी में ऊँटों का मेला, बैलगाड़ियों का भी रेला,
और जतनबर पर ठेलेवाले रोके अपना है ठेला।
समझाने से नहीं मानता फिर कैसे समझाऊँ मैं॥ तेरे० ॥
सभी पटरियों पर दवाइयों के विक्रेता पड़े हुए हैं,
घाट सीढ़ियों पर भिखमंगे मानों उनमें जड़े हुए हैं।
चौखम्भा में साँड़ खड़े हैं, कैसे उन्हें हटाऊँ मैं॥
तेरे घर के द्वार बहुत हैं किससे होकर आऊँ मैं?

वह पगध्वनि मेरी पहिचानी!
कोमल फूलों के दल ऐसे,
मंजुल मोदक मगदल ऐसे।
चप्पल चुम्बित वे चारु चरन,

अतिशय प्रफुल्ल कर देते मन।
जब जाती थीं कालेज को वे, छवि छिटकाती मृदु मस्तानी!
वह पगध्वनि मेरी पहिचानी !!

लारी पर थीं जाया करतीं,
मुझको थी हुलसाया करतीं।
जिन्ना-सी मुझको तड़पातीं,
वे आ आकर थीं चल जातीं।
पर दैवयोग का कहना क्या!
जैसे सोनार को गहना क्या!
आये उनकी लेकर पत्री, एक दिन पण्डित जी विज्ञानी।
वह पगध्वनि मेरी पहिचानी!

मैं शौहर, वे हो गयीं तिया,
ज्यों नौकर के सर पर खँचिया।
मुझसे अब भी थीं खिंची हुई,
जैसे टर्की से है रशिया।
आयी फिर मधुर सोहागरात!
हो गयी मधुर दो चार बात!
फिर क्या कहना, सन्तुष्ट हुईं, बोलने लगीं कोयलबानी।
वह पगध्वनि मेरी पहिचानी।

पर विश्व अमित परिवर्तनमय!
जैसे रसोइया वर्तनमय !!
विजया की अब तक गोली थीं,
बम का अब गोला बन बैठीं।
जो सोफ़ा थीं वे अकस्मात,
अब उड़न खटोला बन बैठीं।

दिन भर किटकिट करतीं रहतीं, ज्यों लड़ते चीनी जापानी।
वह पगध्वनि मेरी पहिचानी !!

मैं ही मालिक मधुशाला हूँ !
मैं ही मालिक मधुशाला हूँ !

मेरी मधुशाला में आकर, कितने लीडर, कितने महान्।
सुन्दरियों को सँग में लाकर, करते हैं साग्रह सुरापान।।
मैं उन सबका रखवाला हूँ !
मैं ही मालिक मधुशाला हूँ !

मेरी मधुशाला में आकर पण्डित जी ठर्रा उड़ा रहे।
अपने पितरों को एक साथ, भव-बन्धन से हैं छुड़ा रहे।।
मैं ही उनकी गोशाला हूँ !
मैं ही मालिक मधुशाला हूँ !

मेरी मधुशाला में कितने प्रोफेसर, डाक्टर, मास्टर, वकील।
पीकर जब मस्ती में आते, तब बन जाते हैं कोल भील।।
नव सृष्टि बनानेवाला हूँ !
मैं ही मालिक मधुशाला हूँ !

चूनाघाटी

नाना के पावन पाँव पूज,
नानी पद को कर नमस्कार।
उस अण्डी की चादरवाली,
साली-पद को कर नमस्कार।
उस तम्बाकू पीने वाले के,
नयन याद कर लाल लाल।
डगडग सब हाल हिला देता,
जिसके खो खो का ताल ताल।
ले महाशक्ति प्रेस से काग़ज़,
व्रत रखकर हिन्दुस्तानी का।
निर्भय होकर लिखता हूँ मैं,
पाकर दर्शन कृपलानी का।
मुझको न किसी का भय-बंधन,
क्या कर सकता संसार सभी।
मेरी रक्षा करने को है,
सम्पादक का अख़बार अभी।
स्याही काग़ज़ ब्लाटिंग लिए,
कर एकलिंग को नमस्कार।
स्वागताध्यक्ष करने बैठे,
अपना स्वागत भाषण तयार।
घन नघ घन घन घन गरज उठी,
घण्टी टेबुल पर बार-बार।
चपरासी सारे जाग पड़े,
जागे मनिआर्डर और तार।

कविवर श्रीनारायण जागे,
दफ़्तर में जगमोहन जागे।
घर घर कवि सम्मेलन जागे,
बेढब जागे, बच्चन जागे।
जागे कनौजिया के कपूत,
प्रेस के कम्पोज़ीटर जागे।
दोहे जागे, छप्पय जागे,
कविता के सब अक्षर जागे।
लिखते लिखते अपना भाषण,
स्वागताध्यक्ष फिर ठहर गया।
लाया चपरासी वह बोतल,
जिसको था लेने शहर गया।

चूनाघाटी

समधी का जय जयकार भरा,
हृदयों में ओज अपार भरा।
मेटियों में खूब अचार भरा,
गलियों में था कतवार भरा।
रसगुल्लों का वह थार भरा,
भोजन का सकल सुतार भरा।
तश्तरी और पनडब्बे में,
था पान मसालेदार भरा॥
यहीं यहीं चूना घाटी है,
उछल कूद कर खाट लिया।

बरातियों से लड़लड़ कर, कर
अपना सर खल्वाट किया ॥
खाते समय भात समधी ने,
यहीं विलम्ब लगाया था।
यहीं यहीं लड़की वालों ने
निज सर्वस्व लुटाया था ॥
छ सौ आम गिन लिये सबने
लँगड़े देशी यहीं यहीं।
इतनी अच्छी खातिरदारी
और हुई थी कहीं नहीं ॥
कूद पड़े सब वीर बराती
उस बरसाती नाले में।
यहीं तेल साबुन सुर्ती ले,
बन्द कर दिया ताले में ॥
पान थूकते रहे, जरूरत
पड़ी नहीं पिकदानों की।
उस बरात की कथा कह रहीं,
ईटें सभी मकानों की !!
तुम दहेज के लिए मरो,
समधी ने पाठ पढ़ाया था।
इसी गाँव में बरातियों ने,
हलवा खूब उड़ाया था ॥
तुम भी तो उनके वंशज हो,
काम करो, कुछ नाम करो।
कविवर की ससुराल यही है,
झुक कर इसे प्रणाम करो ॥

गोरखपुर

भन भन भन का निनाद छन छन जहाँ,
घन की घटा से भी बनावली सघन है।
कार कतवार की बहार सड़कों पै दिव्य,
बेशुमार बाजों का अजीब अञ्जुमन है॥
दस रुपयों का कद्दू बेचते दुअन्नी पर,
ऐसे मोल भाव का महान मधुवन है।
वृन्दावन मच्छरों का, मक्का यह मक्खियों का,
कक्का! यह यू० पी० का अनोखा अण्डमन है।

मैं हार गई झख मार मार!
तरणि तनूजा अभि अनन्त अथ—
कमल-कोश कलिका सुरम्य रथ—
अघ अमोघ प्रण प्रणय पुण्य-पथ—
टूट गई, सरकार कार।
मैं हार गई झख मार मार!
विश्व-वेदना विमल व्यथाकर,
तरुण अरुण अभिधा नभ निर्भर,
जल-थल कोक ओक इन्दीवर,
खा खिचड़ी आई डकार।
मैं हार गई झख मार मार!
पीड़ा प्रलय शलभ शर-शायक,
निखिल निरत नायक-उन्नायक,
प्रेम प्रतीक पुनीत सहायक,

ले लड्डू ; लाया अचार।
मैं हार गई झख मार मार!

सब्जी मण्डी !
टोकरियों के ढेर : फलों के पर्वत—
हरिताभ, स्वादु, चखनीय।
पिलपिले सेव थे,
न सड़े थे, न गले थे—
और न जाने—क्या क्या !
केले खाये ; खूब अघाए, क्योंकि फिर—
फंक एक—फंक दो !
वह उड़ा। क्या उड़ा ?—किधर—कैसे ?
उधर, किधर ? कुछ भी नहीं !!
राजा भण्डारी देखो ! अलवर की धोबिन देखो !—
खटमल की खों खों सुनकर—
त - मा - शा खतम देखो !!

वरदान—याचना

मानुष हौं तो वही कवि 'चोंच' बसौं सिटी लन्दन के किसी द्वारे।
जो पशु हौं तो बनौ बुल डाग, चलौं चढ़ि कार में पोंछ निकारे॥
पाहन हौं तो थियेटर हाल को, बैठैं जहाँ 'मिस' पाँव पसारे।
जो खग हौं तो बसेरो करौं, किसी ओक पै'टेम्स'नदी के किनारे॥

कवि चोंच का आत्म-परिचय

पागल हूँ, प्रेम का पुजारी हूँ, पवित्र हूँ मैं,
लोगों की निगाहों में विचित्र जीव खासा हूँ।
रसिकों के वश, काव्य करता सरस—
अभिमानी मच्छड़ों के लिए बहाता हवा सा हूँ॥
सज्जनों का सेवक सरल मैं सदा ही रहूँ,
दम्भियों के दर्प हेतु कड़वी दवा सा हूँ।
भिन्न भिन्न भावों का सुरम्य समुदाय हूँ मैं,
'चोंच' सचमुच ही अजीब मैं तमाशा हूँ॥

यह दाढ़ी है बेहया, या में संशय नाहिं।
कितना 'शेव' करौ इसे, बढ़ै दिवस दुइ माहिं॥
बढ़ै दिवस दुइ माहिं, न मानै एक उपाई।
छुरा अनेकन बार, चलावै इस पर नाई॥
कह गिरधर कविराय, बराबर रहती बाढ़ी।
इसको तनिक न हया, बड़ी बेहया यह दाढ़ी॥

रहस्यवाद

अरे ओ इक्के वाले !
कहाँ घुसा आ रहा भवन में चल अनन्त की ओर !
उस निसर्ग के निभृत कोण में।
होता है प्रध्वनित निरन्तर।

कल कल छल छल पल पल थल थल !!
गुञ्जित कर दे मौन स्वर में
खड़ खड़ खड़ टिक टिक टिक टिक !!
मेरी टूटी फूटी हारमोनियम के मधुर कर्कश स्वर से
कर दे तू अपनी हृत्तन्त्री के स्वर का सुन्दर समवाय !!
अरे ओ इक्के वाले !
झिलमिल झिलमिल प्राची का पट
मौन साधना का आवेदन
थिरक रहे सूने कुटीर में आकर क्यों अविराम।
अरे मधुर उच्छ्वास मनोहर, सुना मौन संगीत
अरे ओ इक्के वाले !

वर्षा-वर्णन

लछिमन देखहु मोर गन, नाचहिं वारिद पेख।
सम्पादक नाचहिं मनौ, देखि मुफ्त कौ लेख॥
घन घमण्ड नभ गरजत घोरा,
जिमि गरजहि कालों पर गोरा।
दामिनि दमक रही घन माहीं,
नेता - बैन यथा थिर नाहीं।
बूँद अघात सहहि गिरि कैसे,
समालोचना कविगण जैसे।
बरसहि जलद भूमि नियराये,
मेम्बर झुकहि एलेक्शन आये।
छुद्र नदी भरि चली उतराई,
जिमि लघु कवि कविता छपवाई॥

आदर्श पतोहू

जाको देखि सास की तुरत रुकि जात साँस ,
सुरपुर ससुर सिधारिबो चहत है।
लखि कै जिठानी जिय ठानी बिष खाइबे की ,
नैननि ननद नद धारिबो चहत है।
तेवर निहारि वेगि देवर हहरि उठै ,
ससुर स्वभौन को बिसारिबो चहत है।
नारि ऐसी डाकिनी के आवन के पूरब ही ,
पति पास विपति पधारिबो चहत है।

किय करै घात उतपात रात दिन बैठी ,
बात बड़े लोग की टालतै रहति है।
'चोंच' कवि बसन मलीन हू पहिन लेती ,
सास औ ससुर को भी सालतै रहति है।
सुतों को सुताओं को सतावै पीटै मारै काटै ,
पति मे भी करती अदालत रहति है।
केसनि में ढील जूँ को पालतै रहति नित्य ,
नाक में से नकटी निकालतै रहति है।

है गवाँर त्यों फाड़ा करै कपड़े, दिन राति उन्हें ही सियाती रहै।
कवि 'चोंच' घने बिना तेल के बाल में, सैकड़ों जूँ को जियाती रहै।
लड़के लहु के चिघरैं घर में, बिटिया नित ही चिचियाती रहै।
हम तो घबराय गये इनसे, ई रिसियाती रहैं उबियाती रहैं।

एक दफ़ा जाड़े के दिनों में रात आठ बजे मैंने बग़ल की बाड़ी में पाख़ाने की हाजत रफ़ा की, और योरपिय के काग़ज़ का काम बैंगन के पत्तों से लिया, फिर भोजन के लिये रसोई जाना ही चाहता था कि भाभी ने रोक दिया, उन्होंने झरोखे से मुझे देख लिया था—पिताजी से यथातथ्य कह दिया। पिताजी पहले गरजे, फिर एक हाथ से मेरी बाँह पकड़कर टाँग लिया। और ताल की ओर ले चले उसी तरह टाँगे हुए। वहाँ उसी तरह पकड़े हुए डुबा डुबाकर नहलाने लगे "सौचता जा, सौचता" कहते हुए। जब अपनी इच्छा भर नहला चुके तब प्रहार के ताप से जाड़ा छुटाने लगे।

× × ×

एक बार एकान्त में मैंने पिता जी को सलाह दी थी—तुम्हारे मातहत इतने सिपाही हैं, तुम इस राजा को लूट क्यों नहीं लेते? पिता जी ने सोचा, यह किसी दुश्मन की सिखाई बात है। जो उनकी नौकरी लेना चाहता है। मुझे मार मारकर अपने दुश्मन का भूत उतारते हुए पूछने लगे कि किसने सिखलाया है। मैं किसका नाम बतलाता। वह उद्भावना मेरी ही थी।

× × ×

सबेरे जब जगा, तब घर में बड़ी चहल-पहल थी। साले साहब रो रहे थे, सासु जी ने मारा था। ससुरजी खुड्‌ढी में गिर गए थे। नौकर नहला रहा था। घर में तीन जोड़े बैल घुस आए थे। श्रीमती जी लाठी लेकर हाँकने गई थीं, एक के ऐसी जमाई कि उसकी एक सींग ही टूट गई।............महरी पानी भरने गई थी। रस्सी टूट जाने के कारण पीतल का घड़ा कुएँ में चला गया था। घर का पानी ख़त्म हो आया था। दूसरी रस्सी न होने के कारण पानी भरना बन्द था। पड़ोस में सबेरे रस्सी मिली

नहीं। चन्द्रिका सबेरे से लापता।...मैंने पूछा—"जब बैल की सींग तोड़ी गई थी तब चन्द्रिका था या नहीं।"

गाँव के रिश्ते में चतुरी मेरा भतीजा लगता है। दूसरों के लिए वह श्रद्धेय अवश्य है, क्योंकि अपने उपानह-साहित्य में वह आज कल के अधिकांश साहित्यिकों की तरह अपरिवर्तन-वादी है।—चतुरी चमार, मधुकरी दूसरा संस्करण दरवाजे पर आकर रुक गया। भीतर बातचीत चल रही थी। प्रकाश कुछ-कुछ था। सूर्य डूब रहे थे। मेरे पुत्र की आवाज़ आई—"बोल रे बोल।" इस वीर रस का अर्थ मैं समझ गया। अर्जुन बोलता हुआ हार चुका था। पर चिरंजीव को रस मिलने के कारण बुलाते हुए हार न हुई थी। चूँकि बार-बार बोलना पड़ता था, इसलिए अर्जुन बोलने से ऊबकर चुप था। डाँटकर पूछा गया तो सिर्फ़ कहा "क्या"?

"वही—गुण बो-ल।"

अर्जुन ने कहा—"गुड़।"

बच्चे के अट्टहास से घर गूँज उठा। भर पेट हँसकर, स्थिर होकर फिर उसने आज्ञा की—"बोल—गड़ेश।"

रोनी आवाज़ में अर्जुन ने कहा—"गड़ेश!" खिलखिला-कर हँसकर, चिरंजीव ने डाटकर कहा—गड़ेश—गड़ास करता है—साफ़ नहीं कहना आता—क्यों रे, रोज़ दतौन करता है?

× × ×

धीरे-धीरे प्रवेशिका-परीक्षा के दिन आए।...किताब उठाने पर भय होता था, रख देने पर दूने दबाव से फेल हो जाने वाली चिन्ता।...अन्त में निश्चय किया प्रवेशिका के द्वार तक जाऊँगा, धक्का न मारूँगा, सभ्य लड़के की तरह लौट आऊँगा।. मेरे अविचल कण्ठ से यह सुनकर कि सूबे में पहला

स्थान मेरा होगा, अगर ईमानदारी से पर्चे देखे गए, लोग विचलित हो उठे। पर ज्यों-ज्यों फल के दिन निकट होते आए, मेरी आत्मा वल्लरी सूखती गई।

× × ×

एक दिन माता जी से मैंने कहा "जगतपूर के जमींदारों ने बारात में चलने के लिए बुलाया है और ऐसा कहा है, जैसे मेरे गए बग़ैर बारात की शोभा न बन पड़ती हो।" जमींदारों के आमंत्रण से माता जी छलक उठीं; पिता जी को पुकारकर कहा—"सुनते हो, तुम्हारे सपूत जमींदारों के यहाँ उठने-बैठने लगे हैं; बारात में चलने का न्योता है।"

× × ×

प्रेस की बग़ल में थाना है। जहाँ शान्ति के ठेकेदार रहते हैं। हिन्दू मुसलमान की एकता के दृश्य कोई आँखें खोल कर देखना चाहे तो, जब चाहे, हमारे पच्छिम वाले झरोखे से झाँक कर देख ले। यह अनन्य प्रेम हम सुबह शाम हमेशा देखा करते हैं। तारीफ़ तो यह है कि वह प्रेम केवल मनुष्यों में नहीं, वहाँ के पशु-पक्षियों में भी है। हिन्दुओं के पालतू कुत्ते और मुसलमानों की मुर्ग़ियाँ भी प्रेम करती हैं।

× × ×

बकरियों को भगाने का लोभ लड़कों से न रोका गया। सलाह करके कुछ बाहर तकते रहे, कुछ लोग बिल्लेसुर के पास गए। एक ने कहा, "काका, आओ कुछ खेला जाय।" बिल्लेसुर मुस्कराये। कहा, "अपने बाप को बुला लाओ, तुम क्या हमारे साथ खेलोगे?" फिर सतर्क दृष्टि से बकरियों को देखते रहे। दूसरे ने कहा "अच्छा काका, न खेलो; परदेस गये थे वहाँ के कुछ हाल सुनाओ।" बिल्लेसुर ने कहा, "बिना अपने मरे कोई सरग

नहीं देखता। बड़े होकर परदेस जाओगे तब मालूम कर लोगे कि कैसा है।" एक तीसरे ने कहा "यहाँ हम लोग हैं, भेड़िया का डर नहीं; वह ऊंचे हार में लगता है।" बिल्लेसुर ने कहा, "इधर भी आता है, लेकिन आदमी का भेस बदल कर।"

× × ×

मोटाई इन वीर तुरंगों की ऐसी होती है कि आश्चर्य होता है कि इनकी कमर से कवि और शायर अपनी नायिकाओं की कमर को उपमा न देकर इधर उधर भटकते क्यों रहे। इनका सारा शरीर ऐसा लचकता है, जैसे अंगरेजी कानून, जिधर चाहो उधर मोड़ लो। आँखों से कीचड़ उसी भाँति बहा करता है जैसे हिन्दोस्तान से योरप में सोना जाने का सिलसिला जारी है।*

× × ×

जब यह एक्का चलने लगता है उस समय का हाल न पूछिए। जब चलते-चलते एक्का रुक जाता है, उस समय तो घोड़ा मालूम होता है, पहले रात की दुलहिन है।······या जैसे गाँव के थानेदार दारोग़ा जी जिसके घर के सामने अड़ गए, जल्दी टहलने का नाम नहीं लेंगे।·········जिस समय ऐसे दो तीन एक्के एक साथ दौड़ने लगते हैं, उस समय यदि आप सवार हों तो बीमा कम्पनियों की उपयोगिता सूझने लगती है।

१०९८

* बनारसी एक्का में जुते घोड़े का वर्णन।

पारिभाषिक शब्द-कोष

हिन्दी-अंग्रेज़ी

अतिशय शक्ति का उद्रेक	Surplus Energy
असंगति के निरीक्षण	Perception of Incorgronon
अधोमुख असंगति	Decending Incorgruity
अपकर्ष	Degradation.
आवृत्ति	Repetition.
आन्तरिक संघर्ष	Inner Conflicts.
उपहासात्मक नाटक	Satirical Plays.
उपहास	Satire.
कर्णनाड़ी	Acoustic Nerve.
कक्ष प्रदेश	Axillary Area.
केन्द्र	Centres.
कोष्ठाणु	Cells.
झंकृत वायु	Tympanic Memberances.
नक्रिया प्रसूत्र	Motor Fibers
दृष्टिकेन्द्र	Visual Centres
दृष्टिनाड़ी	Optic Nerve
नाड़ी सूत्र	Nerve Tracts
नाड्यन्त प्रतीत	Cutaneous Sensation
परिवर्तित क्रिया	Reflex Action
प्रहसन	Farce

प्राणदा नाड़ी	Vagus Nerve
फुफ्फुस	Lungs
वाहक प्रसूत्र	Sensory Fibers
वाग्वैदग्ध	Wit
विपर्यय सिद्धान्त	Principles of Inversion
विडम्बना	Ironny
वाणी केन्द्र	Broca centre
महाप्राची	Diaphragm
मुख्य प्रतीत	Special Sensation
मेरुदण्ड प्रदेश	Spinal Cord
यकृत	Liver
यांत्रिक क्रिया	Automatism
वाह्य संघर्ष	Outer Conflicts.
वाग्वैदग्ध	Wit
शुद्धहास्य	True Comic
सहजज्ञान	Common Sense
साधारण प्रतीत	General Sensation
स्वाद केन्द्र	Taste centre
सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाग	Aeveoli
श्रवण नाड़ी	Cochlear Nerve
हास्यात्मक	Humorous
हास्य	Humour
हास्यकेन्द्र	Laughing centre
हनुप्रादेशिक केन्द्र	Area for opening anp closing Jors

पारिभाषिक शब्द-कोष

अंग्रेजी-हिन्दी

Area for opening and closing Jors	हनुप्रादेशिक केन्द्र
Axillary Area	कक्ष प्रदेश
Acoustic Nerve	कर्ण नारी
Automaticsm	यांत्रिक क्रिया
Aeveoli	सूक्ष्माति सूक्ष्म भाग
Broca centre	वाणी केन्द्र
Centre	केन्द्र
Cells	कोष्टाणु
Common Sense	सहज ज्ञान
Cochlear Nerve	श्रवण नारी
Cutaneous Sensation	नाड्यन्त प्रतीत
Degradation	अपकर्ष
Decending Incorguity	अधोमुख असंगति
Diaphragm	महाप्राची
Farce	प्रहसन
General Sensation	साधारण प्रतीत
Humor	हास्य
Humorous	हास्यात्मक
Inner Conflicts	आन्तरिक संघर्ष
Ironny	विडम्बना

Laughing Centre	हाराकेन्द्र
Liver	यकृत
Lungs	फुस्फुस
Motor Fibers	तक्रिया प्रसूत्र
Nerver Tracts	नाड़ी सूत्र
Optic Never	दृष्टि नाड़ी
Principles of Diversion	विपर्यय सिद्धान्त
Perception of Incorgruous	असंगति के निरीक्षण
Reflex action	परिवर्तित क्रिया
Repetition	आवृत्ति
Reflex Action Spinal cord	परिवर्तित क्रिया
Principles of Inversion	मेरुदण्ड प्रदेश
Surplus Energy	अतिशय शक्ति का उद्रेक
Satirical Plays	उपहासात्मक नाटक
Sensory Fibers	ग्राहक प्रसूत्र
Special Sensation	मुख्य प्रतीत
Satire	उपहास
Tympanic Membrane	झंकृत वायु
True comic	शुद्ध हास्य
Taste centres	स्वाद केन्द्र
Visval centre	दृष्टि केन्द्र
Vagus Nerve	प्राणदा नाड़ी
Wit	वाग्वैदग्ध